मूल्य : रु. ६/-
अंक : १७१
मार्च ०७

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी
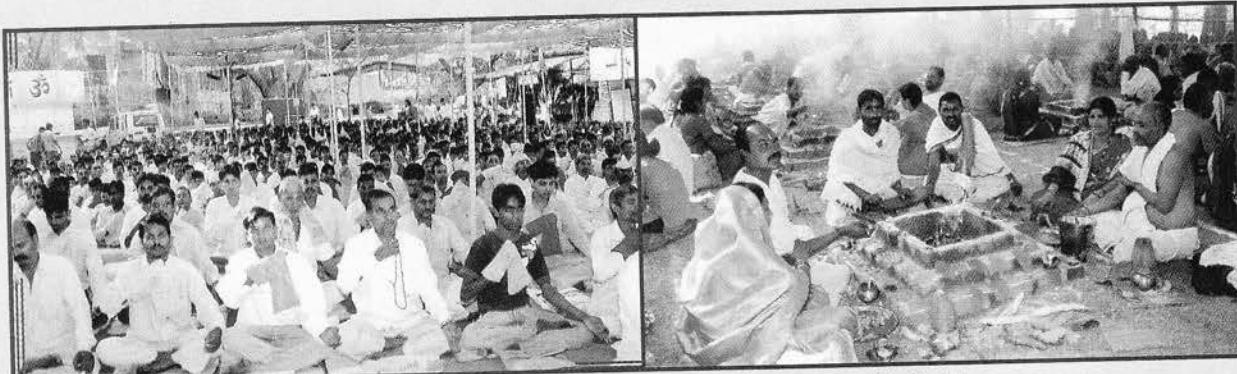
गोरेगाँव (मुंबई) के साधक सम्मेलन में जप करते हुए पूज्यश्री के शिष्य तथा
उदगीर जि. लातूर (महा.) में 'श्री गणेश यज्ञ' का विशाल आयोजन ।
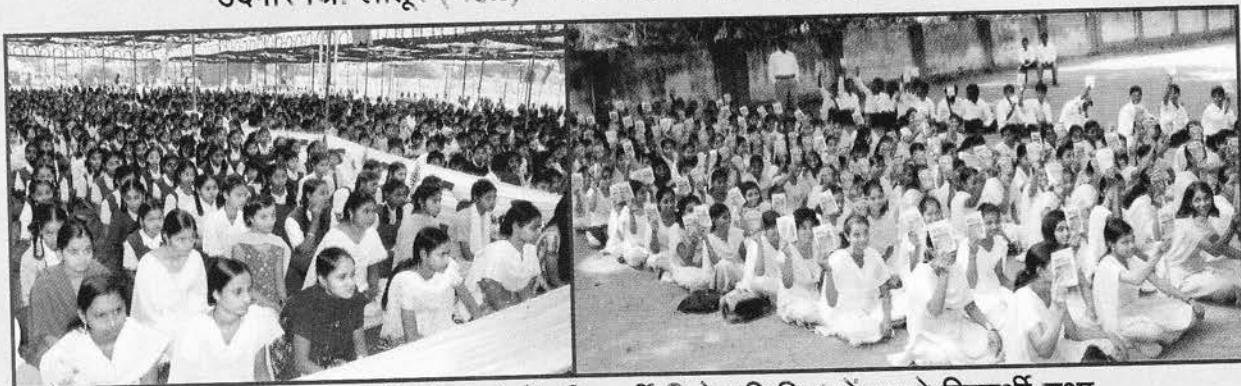
जामनेर जि. जलगाँव (महा.) में 'विद्यार्थी विशेष शिविर' में उमड़े विद्यार्थी तथा
अचलपूर-परतवाड़ा जि. अमरावती (महा.) में विद्यार्थियों में सत्साहित्य-वितरण ।
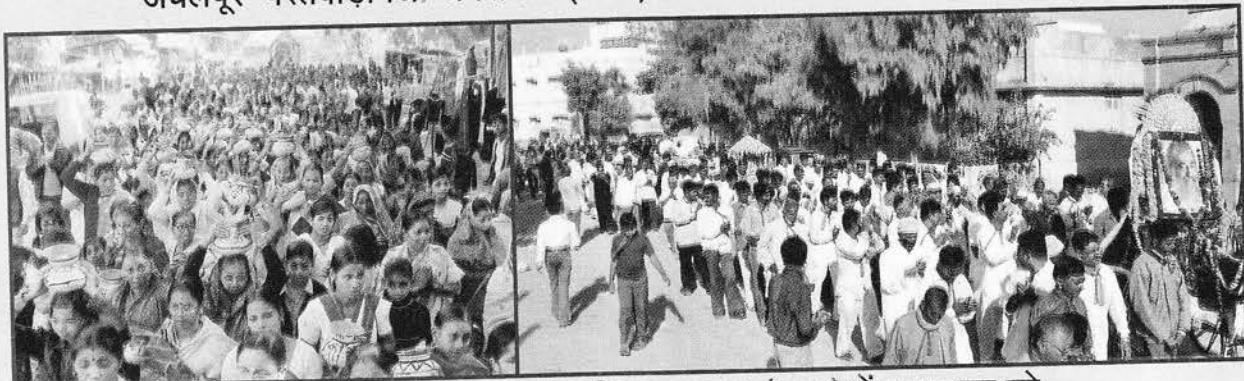
रायबरेली (उ.प्र.) तथा द्वारका जि. जामनगर (गुज.) में वातावरण को
पवित्र बनाने हेतु विशाल भगवन्नाम संकीर्तन यात्राएँ ।
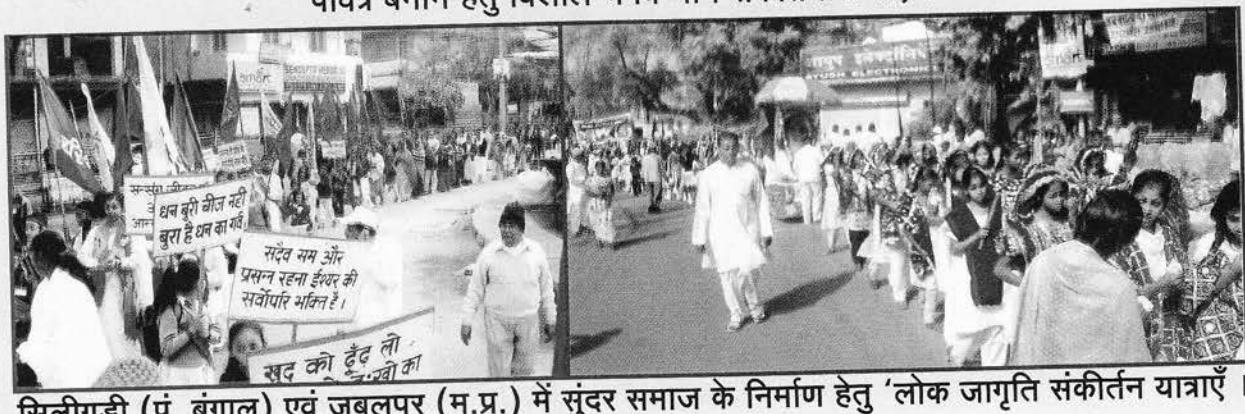
सिलीगुड़ी (पं. बंगाल) एवं जबलपुर (म.प्र.) में सुंदर समाज के निर्माण हेतु 'लोक जागृति संकीर्तन यात्राएँ ।

वर्ष : १७ अंक : १७१ मार्च २००७ फाल्गुन-चैत्र वि.सं. २०६३-६४ मूल्य : रु. ६/-

ऋषि प्रसाद

मासिक पत्रिका

इस अंक में

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : दिव्य भास्कर, भास्कर हाऊस, मकरबा, सरखेज-गाँधीनगर हाईवे, अहमदाबाद - ३८००५१
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

अन्य देशों में
(१) वार्षिक : US$ 20
(२) द्विवार्षिक : US$40
(३) पंचवार्षिक : US$ 80
(४) आजीवन : US$200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US$ 20	US$ 80

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
फोन : (०७९) २७५०३४६६.
e-mail : ashramindia@ashram.org
ashramindia@gmail.com
web-site : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें। पता-परिवर्तन हेतु एक माह पूर्व सूचित करें।

वेद अमृत

भगवान माधुर्यमय हैं। **मधुरं मधुरेभ्योऽपि।** मधुर से भी मधुर हैं। अपनी सत्ता से पृथ्वी में भी अद्‌भुत मिठास भरनेवाले हैं। 'अथर्ववेद' में ऐसे मधुमय परमात्मा से प्रार्थना की गयी है कि

ॐ जिह्वाया अग्रे मधु मे
जिह्वामूले मधूलकम् ।
ममेदह क्रतावसो
मम चित्तमुपायसि ॥

'मेरी जिह्वा के अग्र भाग पर माधुर्य हो। मेरी जिह्वा के मूल में भी माधुर्य और ज्ञान हो । मेरे कर्म में माधुर्य आये, मेरी बुद्धि में माधुर्य आये । मैं माधुर्य में निवास करूँ और माधुर्य मुझमें निवास करे।'

वाचा वदामि मधुमद्
भूयासं मधुसंदृशः ॥

'मैं मधुर वाणी बोलूँ और मैं मधुर आकृतिवाला हो जाऊँ।'

(१.३४.२-३)

हे प्रभु ! आप मधुमय हो। मेरा जीवन आपकी मधुरता में सराबोर हो मधुर हो जाय। मैं जो बोलूँ मधुमय हो। कटु वाणी बोलने से हमारी जिन्दगी छिन्न-भिन्न हो जाती है। तू-तड़ाके की भाषा दानवों की भाषा है। मधुर, प्रिय एवं सारगर्भित वचन देवों की भाषा है। मधुर वाणी बोलनेवाला सबको प्यारा लगता है । कटु वाणी बोलनेवाला सबके लिए मुसीबत बनता है। आप अपने घर में, कुटुंब में - सास-बहू, देवरानी-जेठानी, पड़ोसी-पड़ोसिन सब एक-दूसरे को स्नेह से सींचें । तू-तड़ाके की खड़ी बोली व्यवहार में ठीक नहीं। व्यवहार में मधुरता का सिंचन करें । एक-दूसरे को भगवन्नाम मिश्रित, स्नेहमिश्रित, नम्रता एवं सद्‌भाव संयुक्त वाणी बोलें।

निज में जगाओ माधुर्य मधुमय का

- पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

वाणी ऐसी बोलिये
मनवा शीतल होय।
अपना अहं छोड़ दे
तो प्रेम करे सब कोय ॥

सबसे नम्रता एवं प्रेम पूर्वक हृदय में मिठास भरनेवाले वचनों में बात करें।

आगे वेदमंत्र कहता है : 'हे प्रभु ! मेरे कर्मों में, बुद्धि में आपका माधुर्य प्रकटे । आप मधुमय हैं तो मैं भी आपके माधुर्य में मधुमय बन जाऊँ।'

कर्मों में माधुर्य प्रकटे माना कर्म भगवत्प्रीत्यर्थ हों। भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म जीव की सद्‌गति कराते हैं, जीव को ऊँची यात्रा कराते हैं किंतु दुष्कर्म, बुरे कर्म जीव को नाना योनियों में भटकाते हैं। फिर जीव कभी गधा, कभी कुत्ता, कभी घोड़ा, कभी बैल बनता है । इसलिए सेवा, जप, ध्यान, अनुष्ठान बहुजनहिताय-बहुजनसुखाय हो, भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करें। सबका मंगल, सबका भला हो, सब सुखी हों । सब स्नेह से, परस्पर प्रीति से एक-दूसरे का मंगल सोचें, मंगल करें। भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करने से बुद्धि में सात्त्विकता आती है। सात्त्विक बुद्धि धीरे-धीरे तत्त्वबुद्धि बनती है। तत्त्वबुद्धि में परमात्मा का ओज-तेज, प्रसाद एवं माधुर्य प्रकट होता है और जीव मधुमय परमात्मा में विश्रांति पा के मधुमय बन जाता है।

ॐ मधुमन्मे निक्रमणं
मधुमन्मे परायणम्।

मेरा जाना मधुरता से युक्त हो, मेरा आना मधुरता से युक्त हो। मैं आऊँ तो मधुरता से, जाऊँ तो मधुरता से, संसार की आसक्ति करके न जाऊँ। मोह-ममता और अहं लेकर किसीसे न मिलूँ क्योंकि धन का, सत्ता का अहं बेवकूफ लोगों को होता है। वे मूर्ख धन, सत्ता साथ में लाये नहीं थे और ले जायेंगे नहीं तो

अहं क्यों भर के रखा है ?

समर्थ रामदास कहते थे : 'जो धन का, सत्ता का, रूप का, सौंदर्य का अहंकार करते हैं वे पठित मूर्ख हैं।' ये आपके थे नहीं, आपके साथ रहेंगे नहीं, चलेंगे नहीं तो अभिमान क्यों करता है बेटे ! रावण के पास कितना धन, कितनी सत्ता थी, वे नहीं रहे। हिरण्यकशिपु का भी कुछ नहीं रहा तो अपना क्या रह जायेगा ? इसलिए बुद्धिमत्ता, धन, सत्ता - किसीका भी गर्व करके अपने ज्ञानस्वरूप परमात्मा से दूर नहीं होना।

जो जरा-जरा बात में चिढ़ता है, व्यसन करता है उसका चेहरा भी ऐसा ही होता है। अभिमानी का चेहरा और बर्ताव देख लोग दूर भागते हैं । अभिमानरहित को देखो- बालक का कैसा बर्ताव होता है कि अपने तो उसको प्यार करते ही हैं, पड़ोसी भी पुचकारते हैं क्योंकि बच्चे में अभिमान नहीं है, वह अहंरहित है। रावण जब निकलता था तो 'अरे, रावण आया, रावण आया...' करके डर से लोग घर में भाग जाते थे और रामजी निकलते तो 'श्रीराम आये, श्रीराम मिलें, श्रीराम मिलें...' ऐसा बोलते हुए दर्शन करने भागे आते थे। कंस का नाम सुनकर लोग घर में छुप जाते थे और श्रीकृष्ण आते तो सब भाग-भाग के दर्शन करने को आते थे।

आप अपने में मधुमय परमात्मा की जागृति करो । आप दुकान में जाओ, कार्यालय में जाओ, घर में जाओ तो मधुरता से जाओ। सुबह नींद में से उठो तो थोड़ी देर मधुमय परमात्मा में विश्रांति पाओ : 'हे प्रभु ! मेरी वाणी मधुर हो, मेरा मन मधुर हो, मेरा जीवन मधुर हो क्योंकि सबमें माधुर्य भरनेवाले मेरे प्रभु मधुमय हैं।'

बच्चा बोलता है : 'माँ ! तुम मेरी हो न!' माँ तो पहले भी है लेकिन 'मेरी' बोलने से माँ का माधुर्य और खिलता है। ऐसे ही आप भगवान को बोलो : 'तुम मेरे हो न! मेरे हो न प्रभु ! मैं तो तुमको नहीं जानता लेकिन मेरे आत्मा हो के बैठे हो न ! हे मधुमय ! हे सुखमय ! हे आनंदमय ! हे मंगलमय प्रभु ! तुम मधुर से भी मधुर हो, मंगलों से भी मंगल हो, पावनों से भी पावन हो और तुम्हारा नाम परम पावन, परम मंगल तथा परम माधुर्य देनेवाला है। भगवान तुम मधुरता और पावनता की खान हो।'

जैसे माँ को स्नेह करने से माँ बच्चे को कैसे दिल से लगाती है, ऐसे ही आप भगवान को प्रेम करो तो भगवान आप पर अपना माधुर्य छलका देंगे और आपके स्वभाव में मधुरता भर देंगे।

माधुर्य देनेवाले भगवान दिखते हैं, वास्तव में तुम्हीं वह हो । विकार, अहंता व अज्ञानता से आयी हुई कटुता, अहंता एवं ममता को उखाड़ फेंको । हे व्यापक विभु ! अपने मधुमय स्वभाव में जागो । ■

(पृष्ठ ०७ का शेष)

दवाई की जरूरत उतनी ज्यादा होती है। जितनी अशांति अधिक उतना शांत स्वभाव बनाने का प्रयास अधिक करो । केवल सुबह-शाम या केवल रविवार अथवा नये वर्ष के दिन ही इस सुधा का पान नहीं करना है अपितु चलते-फिरते, खाते-पीते इसका पान करते हुए अपने मन से पूछो कि क्या हाल है ?

मन एक जगह जाय तो उसे आत्मा में ले आओ, दूसरी जगह जाय तो फिर ले आओ। इस प्रकार जाने की जगह तो पचास होंगी लेकिन उन पचास जगहों से एक-एक बार मन आत्मा में भी आ जायेगा। इस प्रकार मन पचास बार आत्मा की तरफ आया। मन सब जगह तो थोड़ा-थोड़ा गया परंतु बहुमत आत्मा के तरफ का हो गया। इसकी आदत हो जायेगी तो तुम्हारा अभ्यास स्वाभाविक हो जायेगा । फिर मन को रोकना कठिन नहीं होगा।

आदमी जितना भीतर से निर्धन होता है, उतना बाहर का धन चाहता है। जितना भीतर से खाली होता है, उतना बाहर से भरने की कोशिश करता है । जो भीतर से भर गया उसको फिर बाहर का भरने की ज्यादा चिंता नहीं रहती, महत्त्व नहीं रहता, उसके पीछे-पीछे प्रकृति घूमती-फिरती है। ■

गुरु संदेश

चिंतन छोड़ना मुख्य है, वस्तु छोड़ना मुख्य नहीं

- कैसेट 'लगाओ दम मिटे गम' से

अष्टावक्रजी महाराज ने कहा है :

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्यज।
क्षमार्ज्जवदयातोषंसत्यं पियूषवद् भज॥

'हे प्रिय ! यदि तू मुक्ति चाहता है तो विषयों को विष के समान छोड़ दे और क्षमा, आर्जव (सरलता), दया, संतोष व सत्य को अमृत के समान सेवन कर।'

(अष्टावक्र गीता : १.२)

'अष्टावक्र गीता' में ऐसा ज्ञान है, जिसका विचार करनेमात्र से जीवन में उत्साह, आनंद, प्रेम छलकने लगता है, बल और प्रकाश आने लगता है। हम इधर-उधर की बात नहीं करते, सीधे साक्षात्कार की बात बताते हैं । छोटी-मोटी बात सुनने की तो बहुत जगह हैं, यहाँ आये हो तो अष्टावक्रजी जैसे संतों का संवाद सुनो। साधारण गाड़ी में क्या बैठना, ब्रह्म-जहाज में बैठो !

भोलेबाबा ने भी कहा है :

जो मोक्ष है तू चाहता, विष सम विषय तज तात रे।
आर्जव क्षमा संतोष शम दम, पी सुधा दिन रात रे॥
संसार जलती आग है, इस आग से झट भाग कर।
आ शांत शीतल देश में, हो जा अजर ! हो जा अमर !!

जब-जब संसार का, शत्रु का चिंतन हो, किसी मित्र की याद सताती हो तो अपने चित्त को समझाकर आत्मा के शांत, शीतल देश में ले आओ । हिमालय को नहीं कहा है शीतल या शांत देश, तुम्हारे चित्त की गहराई ही, तुम्हारा आत्मा ही शीतल और शांत देश है । 'शत्रु हार भी गये तो क्या ? मित्र मिल भी गये तो क्या ? आखिर कब तक ?' - इस प्रकार विवेकवती बुद्धि का उपयोग करोगे तो तुम शीतल देश में शीघ्रता से आ सकोगे। यदि जगत की आसक्ति की तो फिर तप्तदेश हो जायेगा, अशांति, राग-द्वेष सतायेंगे। जब अशांति हो तो शांत विचार करो, इन्द्रियों की लोलुपता का विचार आये तो मन को समझाओ। 'शम' अर्थात् मन को रोकना। जहाँ-जहाँ तुम्हारी मन-इन्द्रियाँ जाती हैं, वहाँ-वहाँ से दम लगाकर उन्हें अपने आत्मा में स्थापित करो तो जन्म-मृत्यु का गम मिट जायेगा। जहाँ तुम्हारी इन्द्रियाँ मन को ले भागती हैं, वहाँ से अपने मन को विवेक द्वारा दम लगाकर ले आओ आत्मा में।

'लगाओ दम मिटे गम' - दम लगाना अर्थात् इन्द्रियों को रोककर मन को आत्मा में स्थित करना। इससे कौन-सा गम मिटेगा ? बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्कर में जाने का गम मिट जायेगा। बात तो सीधी है लेकिन सीधी बात का भी लोग टेढ़ा अर्थ ले लेते हैं । थोड़ा-सा तम्बाकू डालते हैं, और भी कुछ डालते हैं, फिर फूँकते हैं -फूऽऽऽ.... और बोलते हैं 'लगाओ दम मिटे गम।' इससे गम मिटेगा नहीं, गम और बढ़ेगा । यह तो जीवन को बरबाद करना ही है । दम अर्थात् मन-इन्द्रियों को रोककर आत्मसुधा का पान करो।

बाबाजी ! हम मन को रोकना तो चाहते हैं किंतु कैसे रोकें ? मन रुकता नहीं है ।

भाई ! आदत पुरानी है । जिस प्रकार दौड़ते हुए घोड़े को एकदम रोकना मुश्किल है । एकदम रोकोगे तो उसके आगे के पैर ऊँचे हो जायेंगे और तुम गिर पड़ोगे । घोड़े को एकदम रोको मत, एकदम छोड़ो मत उसकी बागडोर । जैसे ड्राइविंग की परीक्षा देने जाते हैं तब आठ बनाना होता है तो स्टियरिंग उस प्रकार घुमाओ और शून्य बनाना हो तो दूसरे प्रकार से स्टियरिंग घुमाओ ताकि वहीं-का-वहीं पहिया घूमे। ऐसे ही तुम अपने मन का स्टियरिंग कैसे घुमाया जाता है यह जान लो, जिससे मन घूम-फिर के आत्मा में ही आये। फिर उसको पता भी नहीं चलेगा कि कौन-सा उस्ताद मुझे चला रहा है। लड़ाई या पहलवानी से मुक्ति नहीं होती है, युक्ति से मुक्ति होती है लेकिन हम लोग उस युक्ति को छोड़कर कुछ-का-कुछ कर रहे हैं। कोई उपवास करते हैं, कोई नंगे पैर चलते हैं किंतु उनका चिंतन नहीं छूटता । देह छूटती है पर देह का चिंतन नहीं छूटता । चिंतन छोड़ना मुख्य है, वस्तु छोड़ना मुख्य नहीं है । विषय को विष समान छोड़ दो- इसका अर्थ यह नहीं कि तुम खाना-पीना छोड़ दो, देखना छोड़ दो । शरीर है

तो यह सब होगा ही । ज्ञानी महापुरुषों का भी खाना-पीना, हँसना, जीना-मरना सब होता है परंतु अज्ञानी का सब नैन का चैन चुरा के चला जाता है, नींद हराम हो जाती है। जरा-सा अनुकूल मिल गया तो आ...हा...हा...

देखो बढ़िया-से-बढ़िया क्या श्रीनगर के गुलाब हैं चश्मशाही ! किंतु सोचो कि यह सब दिखनेवाला है । जो दृश्य है वह अनित्य है, मिथ्या है, वह सब नष्ट हो जायेगा। वह देखने भर को है । जिससे दिखता है वह नित्य चैतन्य मैं हूँ । जिन आँखों से देखा वे भी आखिर जल जायेंगी, जिस वृत्ति ने देखा वह भी बदल जायेगी पर मेरा सच्चिदानंद परमात्मा नहीं बदलेगा।

क्या कोयल जैसी आवाज है, कितनी मधुर आवाज है ! परंतु जिस कंठ से निकली वह कंठ प्रकृति का है, जिन कानों ने सुना वे भी प्रकृति के हैं । थोड़ी देर उसकी वृत्ति और अपनी वृत्ति दोनों मिल गयीं तो जरा मजा आ गया और मजा चला भी गया लेकिन यह मजा तब था जब 'मैं' था, मेरा चैतन्य था तो मजे का आधार मैं हूँ ।

जीवन में सरलता लाओ, क्षमा लाओ। किसीने कुछ कह दिया तों उस बात को पकड़कर अशांत मत हो जाओ। गंगाजी तिनका बहाने में देर करे परंतु तुम क्षमा करने में देर मत करो।

क्षमा बड़न को होत है, छोटन को उत्पात।
विष्णु को क्या घटी गयो, जो भृगु ने मारी लात॥

भक्ति और ज्ञान की रक्षा करने के लिए युक्ति चाहिए । तन्दुरुस्ती की रक्षा करने के लिए भी युक्ति चाहिए । एक सूफी फकीर हो गये पंजाब में, जिनका नाम था निर्मल स्वामी। वे कहते हैं कि ब्रह्मज्ञानी के यहाँ साधक या शिष्य होकर रहना तो क्या, कुत्ता होकर रहना भी भला है। कभी-न-कभी तो ब्रह्मविद्या पचा लोगे । आदर हो ऐसी जगह हजारों मिलेंगी लेकिन ब्रह्मवेत्ता गुरु के पास आदर न हो, सम्मान न हो, तुम्हारी बात काट दी जाय, तुम्हें चोट दी जाय तो भी तुम उसमें बुरा मत मानना। हम पर चोट नहीं होती, हमारी मान्यता पर चोट होती है, हमारे अहं पर चोट होती है । अपने देहाभिमान को चोट पहुँचती है । देहाभिमान नष्ट हुए बिना जब मनुष्य अपनेको सुरक्षित मान लेता है उसी समय उसका पतन होता है।

जापान में एक बूढ़ा लोगों को वृक्ष पर चढ़ने का प्रशिक्षण देता था । एक उत्साही नवयुवक पेड़ पर चढ़ गया, आखिरी टहनी तक पहुँच गया । उस समय बूढ़ा इधर-उधर देखने लगा, साथियों से गपशप लगाने लगा । जवान ने सोचा कि मैं खतरे की जगह पर हूँ, टहनी पतली है और बूढ़ा निश्चिंत है, ध्यान भी नहीं रख रहा है । फिर वह धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा । करीब २० फुट उतरना बाकी होगा तब एकाएक बूढ़े ने युवक को आवाज लगायी : ''सँभलकर नीचे उतरना, खूब ध्यान से उतरना।''

नीचे आकर युवक ने कहा : ''जब खतरे की जगह थी, जब सँभालने की जरूरत थी तब अनदेखा किया और जब मैं बिल्कुल नजदीक आ गया तब कहने लगे कि सावधान ! सँभलकर उतरना नहीं तो चोट लग जायेगी ?''

बूढ़े ने कहा : ''जहाँ खतरा होता है, वहाँ मनुष्य अपने-आप सतर्क रहता है । जैसे-जैसे खतरा कम होता है, अपने-आपमें लापरवाही होती है, असावधानी होती है और वहीं दुर्घटना घट जाती है।''

जहाँ तुम्हें पुचकारा जाता है वहीं देहाभिमान, जगत की आसक्ति व वाहवाही की दुर्घटना घटती है और जीवन पूरा हो जाता है । जहाँ तुम पर चोट की जाय वहाँ तुम अपने-आप सँभलते हो, सतर्क रहते हो कि कहीं कोई गलती न हो जाय, ऐसा-वैसा न हो जाय। सद्गुरु के द्वार पर सदा ही अहं पर चोट का खतरा रहता है। खतरा इसलिए होता है कि सँभल जाओ ।

सद्गुरु युक्ति बताते हैं अशांति के प्रसंगों को भी हँसते-हँसते बिताने की । सब लोग तो 'अष्टावक्र गीता' संस्कृत में नहीं पढ़ सकते इसलिए भोलेबाबा ने इसे अपनी छंदावली में लिया और आश्रम की समिति ने 'ब्रह्मरामायण' के रूप में छपवा दिया है। इसे पक्का कर लो :

जो मोक्ष है तू चाहता, विष सम विषय तज तात रे।
आर्जव क्षमा संतोष शम दम, पी सुधा दिन रात रे॥

यह जो सुधा है आर्जव, क्षमा, संतोष, शम, दम की इसे रोज पीना है । रात को सोते समय और विक्षेप के समय तो खास पीया करो । रोग जितना ज्यादा होता है

(शेष पृष्ठ ०५ पर)

(चैत्री नूतन वर्ष वि.सं. २०६४ प्रारंभ : १९ मार्च)

चैत्री नूतन वर्ष मंगलमय हो

इस वर्ष हम २८वें कलियुग के ५१०९वें वर्ष विक्रम संवत् २०६४ में दिनांक १९ मार्च २००७ को प्रवेश कर रहे हैं। भारतीयों के लिए चैत्र शुक्ल प्रतिपदा का दिन अत्यंत शुभ होता है। इस दिन भगवान ब्रह्माजी द्वारा सृष्टि की रचना हुई तथा युगों में प्रथम सत्ययुग का प्रारम्भ हुआ।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम एवं धर्मराज युधिष्ठिर का राजतिलक दिवस, मत्स्यावतार दिवस, वरुणावतार संत झुलेलालजी का अवतरण दिवस, सिक्खों के द्वितीय गुरु अंगददेवजी का जन्मदिवस, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक डॉ. हेडगेवार का जन्मदिवस, चैत्री नवरात्र प्रारम्भ आदि पर्वोत्सव एवं जयंतियाँ वर्ष-प्रतिपदा से जुड़कर और अधिक महान बन गयीं। इस दिन 'गुड़ी पड़वा' भी मनाया जाता है, जिसमें गुड़ी (बाँस की ध्वजा) खड़ी करके उस पर वस्त्र, ताम्र-कलश, नीम की पत्तेदार टहनियाँ तथा शर्करा से बने हार चढ़ाये जाते हैं। गुड़ी उतारने के बाद उस शर्करा के साथ नीम की पत्तियों का भी प्रसाद के रूप में सेवन किया जाता है, जो जीवन में (विशेषकर वसंत ऋतु में) मधुर रस के साथ कड़वे रस की भी आवश्यकता को दर्शाता है।

नूतन संवत्सर प्रारम्भ की वेला में सूर्य भूमध्य रेखा पार कर उत्तरायण होते हैं। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से प्रकृति सर्वत्र माधुर्य बिखेरने लगती है। भारतीय संस्कृति का यह नूतन वर्ष जीवन में नया उत्साह, नयी चेतना व नया आह्लाद जगाता है। वसंत ऋतु का आगमन होने के साथ वातावरण समशीतोष्ण बन जाता है। सुप्तावस्था में पड़े जड़-चेतन तत्त्व गतिमान हो जाते हैं। नदियों में स्वच्छ जल का संचार हो जाता है। आकाश नीले रंग की गहराइयों में चमकने लगता है। सूर्य-रश्मियों की प्रखरता से खड़ी फसलें परिपक्व होने लगती हैं। किसान नववर्ष एवं नयी फसल के स्वागत में जुट जाते हैं। पेड़-पौधे नव पल्लव एवं रंग-बिरंगे फूलों के साथ लहराने लगते हैं। बौराये आम और कटहल नूतन संवत्सर के स्वागत में अपनी सुगन्ध बिखेरने लगते हैं। सुगन्धित वायु के झकोरों से सारा वातावरण सुरभित हो उठता है। कोयल कूकने लगती हैं। चिड़ियाँ चहचहाने लगती हैं। इस सुहावने मौसम में कृषिक्षेत्र सुंदर, स्वर्णिम खेती से लहलहा उठता है।

इस प्रकार नूतन वर्ष का प्रारम्भ आनंद-उल्लासमय हो इस हेतु प्रकृति माता सुंदर भूमिका बना देती है। इस बाह्य चैतन्यमय प्राकृतिक वातावरण का लाभ लेकर व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन में भी उपवास द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य-लाभ के साथ-साथ जागरण, नृत्य-कीर्तन आदि द्वारा भावनात्मक एवं आध्यात्मिक जागृति लाने हेतु नूतन वर्ष के प्रथम दिन से ही माँ आद्यशक्ति की उपासना का नवरात्रि महोत्सव शुरू हो जाता है।

नूतन वर्ष प्रारंभ की पावन वेला में हम सब एक-दूसरे को सत्संकल्प द्वारा पोषित करें कि 'सूर्य का तेज, चंद्रमा का अमृत, माँ शारदा का ज्ञान, भगवान शिवजी की तपोनिष्ठा, माँ अम्बा का शत्रुदमन-सामर्थ्य व वात्सल्य, दधीचि ऋषि का त्याग, भगवान नारायण की समता, भगवान श्रीरामचंद्रजी की कर्तव्यनिष्ठा व मर्यादा, भगवान श्रीकृष्ण की नीति व योग, हनुमानजी का निःस्वार्थ सेवाभाव, नानकजी की भगवन्नाम-निष्ठा, पितामह भीष्म एवं महाराणा प्रताप की प्रतिज्ञा, गौमाता की सेवा तथा ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु का सत्संग-सान्निध्य व कृपावर्षा - यह सब आपको सुलभ हो।' इस शुभ संकल्प द्वारा **'परस्परं भावयन्तु'** की सद्भावना दृढ़ होगी और इसीसे पारिवारिक व सामाजिक जीवन में रामराज्य का अवतरण हो सकेगा, इस बात की ओर संकेत करता है यह 'राम राज्याभिषेक दिवस'।

अपनी गरिमामयी संस्कृति की रक्षा हेतु अपने मित्रों-संबंधियों को इस पावन अवसर की स्मृति दिलाने के लिए बधाई-पत्र लिखें, दूरभाष करते समय उपरोक्त सत्संकल्प दोहरायें, सामूहिक भजन-संकीर्तन व प्रभातफेरी का आयोजन करें, मंदिरों आदि में शंखध्वनि करके नववर्ष का स्वागत करें। ■

प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया : श्री हनुमानजी

चैत्र की पूनम को अवतरित हुए हनुमानजी को सद्गुणसम्पन्ना देवी अंजना व वानरराज केसरी माता-पिता के रूप में मिले थे। बालक पर सर्वाधिक प्रभाव माता के जीवन व उनकी शिक्षा का पड़ता है। सदाचारिणी, तपस्विनी माताओं का आदर्श प्रस्तुत करनेवाली माँ अंजना बालक हनुमान को पुराणों की कथाएँ सुनाया करती थीं, फिर अपने लाड़ले से कथा-विषयक प्रश्न भी पूछतीं। रात्रि-शयन से पूर्व जब माता कथा कहते-कहते झपकी लेने लगतीं तो बालक हनुमान माँ को झकझोरकर कहते : ''माँ ! माँ !! आगे कह, क्या हुआ ?'' उनका सारा ध्यान कथा में ही केन्द्रित होता, निद्रा पास फटक भी नहीं पाती। भगवत्कथा सुनते-सुनते वे भावविभोर हो जाते और उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धार बहने लगती।

रामकथा-श्रवण करते-करते वे भूख-प्यास आदि की परवाह किये बिना घंटों राम-नाम के रस में डूबे रहते, राम-चरित्र का रसपान करते।

प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया। (श्री हनुमान चालीसा)

सेवा व भक्ति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करनेवाले श्री हनुमानजी **ज्ञानिनामग्रगण्यम् सकलगुणनिधानं** – ज्ञानियों में अग्रगण्य तथा सम्पूर्ण गुणों के निधान हैं। ऋष्यमूक पर्वत पर विचरते हुए श्रीरामजी ने हनुमानजी की प्रशंसा करते हुए लक्ष्मणजी से कहा था : ''सचमुच वाणी के दोषों में से एक भी दोष हनुमानजी में नहीं है।'' श्री हनुमानजी के जीवन में सत्य व शील का अद्भुत समन्वय है। रावण से वार्तालाप करते हुए भी उन्होंने शीलयुक्त प्रेममयी वाणी में कहा :

बिनती करउँ जोरि कर रावन।
सुनहु मान तजि मोर सिखावन ॥
(रामचरित., सुं.कां. : २१.४)

राम चरन पंकज उर धरहू।
लंका अचल राजु तुम्ह करहू ॥

प्रह्लादजी हनुमानजी को अपने से श्रेष्ठ भक्त बताते हुए कहते हैं : ''श्री हनुमानजी बड़े ही भाग्यशाली हैं। उन्होंने भगवान श्री राघवेन्द्र के सेवा-रस का निरन्तर ग्यारह हजार वर्षों तक आस्वादन किया है।

यदृच्छया लब्धमपि विष्णोर्दाशरथेस्तु यः।
नैच्छन्मोक्षं विना दास्यं तस्मै हनुमते नमः ॥
(बृहद् भागवतामृत : १.४.५२)

श्रीरामजी से अनायास मुक्ति प्राप्त कर सकते हुए भी जिन्होंने उनकी दास्यभक्ति माँगी। मैं उन श्री हनुमानजी को प्रणाम करता हूँ।''

श्री हनुमानजी के अलौकिक गुणों को सुनकर नारदजी किंपुरुषवर्ष[1] में पहुँचे। भगवान रामजी की सेवा में तल्लीन परम भक्त हनुमानजी के दर्शन कर वे इतने गद्गद हो उठे कि 'जय श्री राघवेन्द्र', 'जय माँ जानकी', 'जय श्री लक्ष्मण', 'जय श्री हनुमान' कहकर उन्मत्त हो नाचने लगे। आज वे अपनी 'नारदीय संकीर्तन पद्धति' भूलकर 'हनुमत्कीर्तन पद्धति' में सराबोर हो गये थे। प्रभुनाम के परम रसिक हनुमानजी भी अब अपने-आपको थाम न पाये। स्नेह-उद्रेकवश उन्होंने एक छलाँग मारकर नारदजी को अपने अंक में भर लिया और खुद भी नृत्य-संकीर्तन में तल्लीन हो गये। उस प्रेमाभक्ति के महोत्सव को देखकर रामजी, सीताजी व लक्ष्मणजी अत्यंत मुग्ध हो रहे थे। ■

१. किंपुरुषवर्ष में श्री हनुमानजी अविचल भक्तिभाव से अपने आराध्य भगवान श्रीराम की उपासना में नित्य लीन रहते हैं।
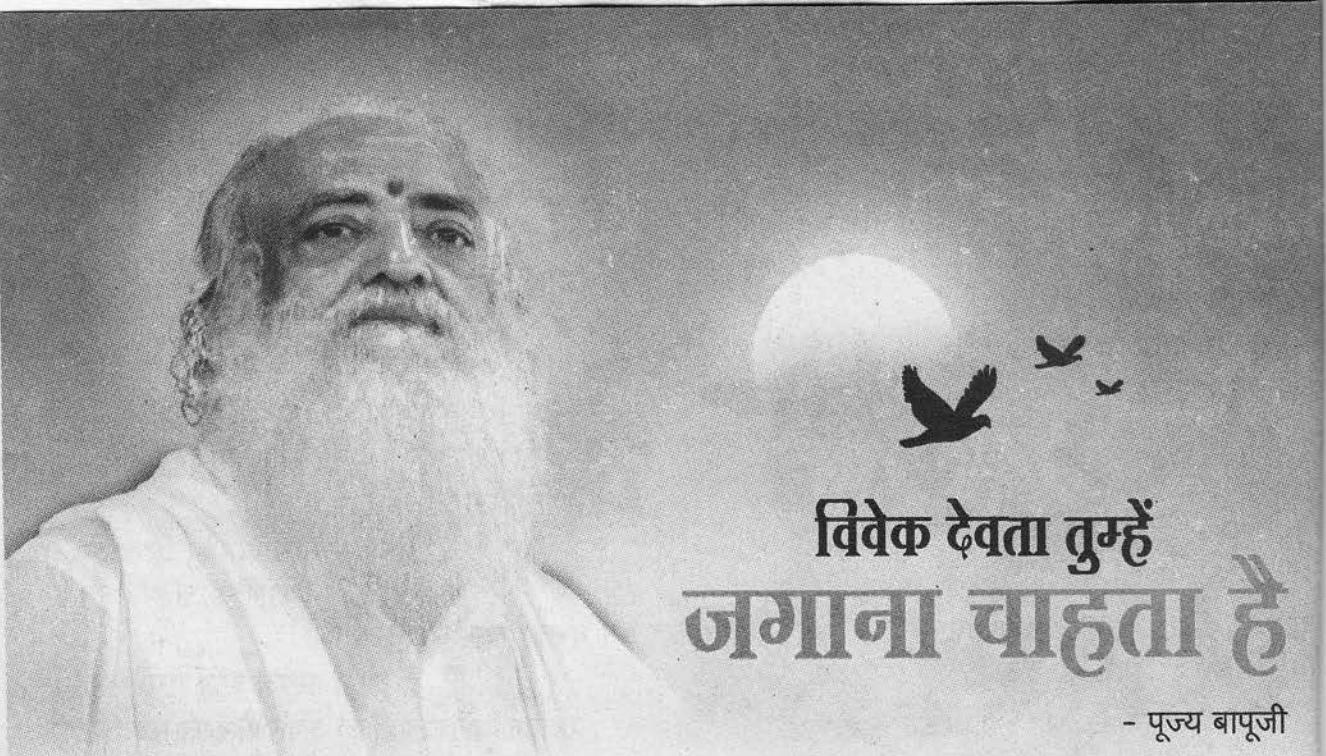
विवेक देवता तुम्हें जगाना चाहता है

- पूज्य बापूजी

धर्म से विवेक होता है कि विवेक से धर्म होता है ?

धर्म से विवेक होता है कि विवेक से धर्म होता है ? बोले : विवेक नहीं होगा तो यह धर्म है, यह अधर्म है पता कैसे चलेगा ? कर्म उत्पन्न व नष्ट होनेवाले हैं लेकिन विवेक अनादि, अनन्त है।

विवेक दो प्रकार का है : सामान्य और विशेष । जीव-जन्तुओं को, पशु-पक्षियों को खान-पान आदि का जो विवेक है वह सामान्य विवेक है। शरीर के खान-पान के उपरान्त सत्य को पाने की योग्यतावाला विवेक विशेष विवेक है।

मनुष्य को विशेष विवेक प्राप्त है। असत् को असत् जाननेवाला विवेक, बदलनेवाले को बदलनेवाला और न बदलनेवाले को न बदलनेवाला जानने का विवेक मनुष्य को स्वतः प्राप्त है। विवेक बीजरूप में है, सत्संग के बिना सुविकसित नहीं होता। **बिनु सतसंग बिबेक न होई।** सत्संग से उस विवेक की वृद्धि होती है और सत्संग भगवान की कृपा के बिना सुलभ नहीं होता। **राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥**

अविवेक का फल दुःख मिलकर मिट जाता है किंतु विवेक का फल सुख मिलकर मिटता नहीं है, सुखस्वरूप ईश्वर की खोज में लगा देता है। इसीलिए अविवेक या पाप अनित्य है। विवेक और प्रभुप्राप्ति रूप पुण्य नित्य है। हम परमात्मा की संतान हैं । हम सत्य हैं । शरीर संसार की संतान है । वह अनित्य है। दुःख संसार की संतान है- अनित्य है, सुख संसार की संतान है- अनित्य है। परमानंद परमात्मा की संतान है और हमारा निजस्वरूप है, नित्य है।

कई सुख आये और चले गये, कई दुःख आये और चले गये, कई निन्दाएँ आयीं और चली गयीं, कई वाहवाहियाँ आयीं और चली गयीं... उन सबको जाननेवाला विवेक देवता अभी भी मौजूद है। क्या ख्याल है ?

विवेक स्वाभाविक, स्वतःसिद्ध है। क्रिया से विवेक नहीं आता, कर्म से विवेक नहीं बनेगा। कर्म जड़ है, कर्ता के अधीन है। विवेक जड़ नहीं है, कर्ता के अधीन नहीं है। कर्ता सुखी है या दुःखी है, कर्ता ठीक कर रहा है कि नहीं कर रहा है वह भी विवेक देवता जानता है। विवेक का नवाँ हिस्सा बुद्धि है। जो भगवान को प्रीतिपूर्वक भजेगा उसकी बुद्धि में भगवान विवेक का योग देते हैं। आप पाप करते हैं तो कोई दानव आपका हाथ पकड़ के आपको बड़ी आँखें, डरावना चेहरा दिखाकर नरक में नहीं ले जाता । आप पुण्य करते हैं तो कोई देवपुरुष आपका हाथ पकड़ के

स्वर्ग में नहीं ले जाता परंतु आप पुण्य करते हैं, सत्कर्म करते हैं तो यह विवेक देवता आपको ऊँची सूझबूझ व मति-गति प्रदान करता है और अगर दूषित कर्म करते हैं तो आपकी बुद्धि को ऐसी प्रेरणा देता है कि आप अच्छी तरह से कहीं फँस जाते हैं । फँसने के बाद वहाँ से दिखता है कि संसार धोखेबाज है, संसार अनित्य है, धक्का लगता है। धक्का लगने का फल यही है कि विवेक देवता फिर आपको अपनी गोद में लेता है।

पैसा-पैसा-पैसा... और रिश्वत में फँस गये। बोले : 'अपनेवालों ने ही फँसाया।' पत्नी-पत्नी-पत्नी... और समझ में आया कि पत्नी किसी और दुनिया में है, धक्का लग गया, पति किसी और से संबंध रखता है, धक्का लग गया। मित्र किसी और से संबंध रखता है या हमारे से और व्यवहार करता है, धक्का लग गया। यह धक्के का एहसास कौन करता है ? जड़ता करती है कि चेतन आत्मा करता है ? आत्मा को धक्का मारे ऐसी कोई चीज ही नहीं है और जड़ता को धक्के का एहसास नहीं होता। धक्के का एहसास विवेक को होता है।

पत्नी चली गयी, भाई चला गया, यह चला गया, वह चला गया... सब जा रहा है, सतत जा रहा है। सब मौत की तरफ जा रहा है । कोई नित्य नहीं। दूसरों को फूँक मारकर जिन्दा करनेवाले भी चले गये।

कह रहा है आसमाँ यह समाँ कुछ भी नहीं।
रोती है शबनम कि नैरंगे जहाँ कुछ भी नहीं॥
जिनके महलों में हजारों रंग के जलते थे फानूस।
झाड़ उनकी कब्र पर है और निशाँ कुछ भी नहीं॥
जिनकी नौबत से सदा गूँजते थे आसमाँ।
दम बखुद है कब्र में अब हूँ न हाँ कुछ भी नहीं॥

कब्र में पड़े हैं, कब्र की ईंट और चूना तक गल गये। विवेक दिखाता है कि देखो बड़े-बड़े मठ, बड़े-बड़े मंदिर, बड़ी-बड़ी मुजायरें जीर्ण-शीर्ण हो गयीं तो शरीर कब तक रहेगा ? ज्यों-ज्यों सत्संग करते हैं त्यों-त्यों यह विवेक प्रखर होता है। विवेक प्रखर होने से क्या होता है ?

नित्य वस्तु की आवश्यकता महसूस होने लगती है और अनित्य सँभलेगा नहीं यह विवेक देवता कि कृपा से पता चल जाता है । कितना भी पकड़े रखो शरीर को, ऐसा नहीं रहेगा । कितना भी पकड़े रखो संबंधों को, ऐसे नहीं रहेंगे । कितना भी पकड़े रखो नौकरी को- एस.डी.एम. बन गये, जिलाधीश बन गये, हम फलाने बन गये... सदा नहीं टिकोगे लाला ! जो भी बने हैं, किसी भी पद पर टिकेंगे नहीं। शरीर अनित्य है, वैभव शाश्वत नहीं, नित्य मौत की तरफ जा रहे हैं तो मिले हुए पद कहाँ तक साथ देंगे ? जिन्होंने पद दिये वे भी नहीं टिकेंगे और जिन्होंने पद लिये वे भी नहीं टिकेंगे, सब चलाचली हो रही है। लेकिन एक अचल वस्तु है जो इस चलाचली को जानती है।

आदि सचु जुगादि सचु ।
है भी सचु नानक होसी भी सचु ॥

जो आदि में सत्, युगों से सत्, अभी भी सत् है और बाद में भी सत् रहेगा, उस परमात्मा की प्राप्ति सत्संग से होती है। सत्संग से नित्य फल की प्राप्ति होती है। सत्संग के बिना कितने भी कर्म करो, कितने भी यज्ञ करो, कितने भी तप करो - व्रत करो - उपवास करो, कर्ता करेगा न ? तो अनित्य फल की प्राप्ति होगी। यदि भगवान की प्रीति के लिए यज्ञ, तप, व्रत करते हैं तो फिर भगवान विवेक देवता को भीतर से जागृत कर देंगे ।

जो नित्य है उससे प्रीति करो । जो अनित्य है उसका विवेक से सदुपयोग करो, उपभोग मत करो। विवेक से उपयोग होता है, अविवेक से उपभोग होता है।

जैसे अविवेकी मक्खी होती है तो चाशनी में डूब मरती है और विवेकी मक्खी किनारे बैठकर अपना काम बना लेती है, ऐसे ही संसार में रहो किंतु विवेक से रहो, अपने आपको जानने का, अपनी अमरता का, शाश्वतता का प्रसाद पाने का काम बना लो।

अपनी नित्यता, मुक्तता, शाश्वतता का अनुभव कर लो । सब बदलने-मिटने के बाद भी जो अबदल, अमिट है, जो चिद्घन चैतन्य है, जिसके साथ कभी आपका वियोग था नहीं, है नहीं, हो सकता नहीं- ऐसी अपनी अमरता को पा लो भाई ! जान लो **वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः** । ऐसे दुर्लभ पद को पा लो। ■

> “मैंने सत्तर बार तौबा की। जब तक सच्चे दिल से तौबा नहीं की थी, तब तक मेरी सुनवायी नहीं हो रही थी और मैं फिर-फिर से वही इल्लत उसी गलती में गिर जाता था लेकिन इकहत्तरवीं बार जब मैंने खूब हृदयपूर्वक अल्लाह-ताला को पुकारा कि 'हे अल्लाह-ताला ! अब तू ही मुझे सांसारिक आकर्षण से, बेईमानी से, कपट से बचा।' तो मेरी प्रार्थना सुनी गयी।”

सूफीवाद की साधना : तौबा - ईश्वरीय पुकार

- बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

इस्लाम धर्म के सूफीवाद में एक साधना है- 'तौबा'। सूफी लोग बोलते हैं : 'तौबा ! अल्लाह-ताला तौबा ! हम कई जन्मों से पैदा हुए और मरते रहे। आँखों को तरह-तरह के दीदार कराये लेकिन इन आँखों ने भी तसल्ली नहीं दी। नाक से कितना ही सूँघा, जीभ से कितना ही चखा और कितनी ही बार कामविकार भोगकर अपनी तबीयत खराब की। हे अल्लाह-ताला ! मुझे विकार से बचा। मुझे पाप से बचा। हे अल्लाह-ताला ! तौबा ! मैं कई जन्मों तक लाखों माताओं के गर्भ में लटका, लाखों पिताओं के शरीर से पसार हुआ, फिर भी दुःखों से नहीं छूटा।'

इस्लाम धर्म के सूफीवाद में यह तौबा मार्ग है। हम लोग अपनी भाषा में इस 'तौबा' को बोलते हैं : भगवान की पुकार, प्रार्थना अथवा शरणागति - **हरिं शरणं गच्छामि।** हे प्रभु ! अब मैं तेरी शरण में हूँ। हे भगवान ! मेरे अपराध क्षमा करो। मुझे माफ कर दो।

एक सूफी फकीर ने कहा कि ''मैंने सत्तर बार तौबा की। जब तक सच्चे दिल से तौबा नहीं की थी, तब तक मेरी सुनवायी नहीं हो रही थी और मैं फिर-फिर से उसी इल्लत (व्यसन, अपराध), उसी गलत खान-पान, उसी गलती में गिर जाता था लेकिन इकहत्तरवीं बार जब मैंने खूब हृदयपूर्वक अल्लाह-ताला को पुकारा कि 'हे अल्लाह-ताला ! अब तू ही मुझे सांसारिक आकर्षण से, बेईमानी से, कपट से बचा।' तो मेरी प्रार्थना सुनी गयी। अब मेरा मन सांसारिक विकारों में नहीं भागता। सत्तर बार प्रार्थना की - तौबा पुकारी लेकिन इकहत्तरवीं बार की प्रार्थना स्वीकार हो गयी।''

सत्तर बार तो क्या, सात सौ बार भी प्रयत्न करके अगर मनुष्य पतन से बचता है, की हुई गलती फिर नहीं दोहराता है, अपने बल का दुरुपयोग नहीं करता है, दूसरों के अधिकार को नहीं छीनता है तो उसका कल्याण हो जाता है।

मनुष्य का कल्याण किस दिन शुरू होता है ? जब उसे अपनी गलती महसूस हो कि 'यह मेरी गलती है और पतन के रास्ते ले जानेवाली है।' कोई भी हठ, कोई भी आसक्ति, किसी भी विकार का पोषण गलती है- यह समझ में आ जाय। जब तक ईश्वरप्राप्ति नहीं हुई, तब तक अपनी गलतियों के साथ समझौता न करें। गलतियों को गहरा न उतारें। केवल भगवान को प्रार्थना करें, पुकारें : 'तौबा ! तौबा !! अल्लाह-ताला तौबा !!!'

तीन प्रकार की तौबा होती है :

एक तौबा होती है जो हमें गंदी आदतों से बचा दे, गंदे कर्मों से बचा दे। जैसे - 'जाने-अनजाने में हमने किस-किस जन्म में न जाने क्या-क्या कर्म कर डाले ! उन सब कर्मों की सजा मुझे न मिले। तौबा ! तौबा !! अल्लाह-ताला तौबा !!! हे अल्लाह-ताला ! मेरे दुर्गुणों, दुराचारों, दुष्कर्मों को क्षमा कर।

मुझे सत्कर्मों में प्रवृत्ति और निष्कामता दे।'

दूसरी तौबा है अल्लाह की कृपा पाने के लिए। जैसे - 'हे अल्लाह-ताला ! (अल्लाह-ताला माना वही अन्तर्यामी आत्मा-परमात्मा । वहम से उसे सातवें अरस पर न मानें । वही अपना आत्मा-परमात्मा है ।) तू मुझे अपनी रहमत दे, अपनी कृपा दे, सद्बुद्धि दे । मैं तेरी प्रीति पाने के लिए ही सत्कर्म करूँ। तेरे मार्ग में आगे बढ़ूँ। तुझे पाने के लिए ही हँसूँ। तुझे पाने के लिए ही रोऊँ। जो कुछ भी करूँ केवल तुझे पाने के लिए करूँ। हे अल्लाह-ताला! मैं अपने बल से तुझे नहीं पा सकता अथवा दुःखों से नहीं छूट सकता हूँ। तू मुझे बल दे । ऐसी रहमत कर कि मैं उस बल का दुरुपयोग न करूँ। जो लोग अपने बल का दुरुपयोग करते हैं, वे बार-बार दुःखी, चिंतित, विकल और बीमार हो जाते हैं। हम दूसरों के अधिकार को न छीनें । ईश्वर में दृढ़ विश्वास रखें। ईश्वर के प्रति हमारी श्रद्धा और हमारा यकीन बना रहे।'

तीसरे प्रकार की तौबा है निर्वासनिक नारायण में विश्रांति पाने के लिए। जैसे - 'हे खुदा ! हे अल्लाह-ताला ! तू मुझे अपने आत्मस्वरूप के ज्ञान का दान दे दे। मेरी 'मैं' तेरे से अलग न रहे। अपने सत्यस्वरूप में मेरी 'मैं' को मिटा दे। जैसे पानी की तरंग सागर का अंश है, ऐसे ही जीवात्मा परमात्मा का अमृत-पुत्र है। हे अल्लाह ! तू सदा मेरे साथ है फिर भी मैं दुःखी हो रहा हूँ, संसार में भटक रहा हूँ। इन कच्चे मित्र और कच्ची सखी-सहेलियों के बीच पक्का मित्र परमात्मा छूट रहा है। तू मुझे अपने में स्थित कर। मैं दोबारा मरूँ नहीं, जन्मूँ नहीं और माताओं के गर्भ में पड़ूँ नहीं। हे अल्लाह ! शरीर को 'मैं' मानकर संसार में आसक्ति करके मैंने कई जन्मों में भटकानेवाली वासना पा ली। हे अल्लाह-ताला ! मुझे कर्मबंधन और वासना से बचा। जिस शरीर को जला देना है, जिन चीजों को छोड़कर मरना है उन सबमें इतनी प्रीति क्यों करें ? अथवा शरीर को विलासी क्यों बनायें ? मुझे सद्बुद्धि दे, सत्प्रीति दे, निजस्वरूप में स्थिति दे।'

ये तीनों प्रकार की तौबा (पुकार) भगवत्तत्त्व में स्थिति पाने के लिए है । पहली तौबा दोषों को मिटाने के लिए है। दूसरी तौबा भगवान के रास्ते दृढ़ता से चलने के लिए है । तीसरी तौबा भगवत्तत्त्व के सिवाय, भगवत्सुख के सिवाय कहीं और हम उलझें नहीं अर्थात् अपने परिच्छिन्न 'मैं' को - 'मैं फलानी जाति का, मैं फलाने संप्रदाय का, मैं फलाना' उस 'मैं' को मिटाकर अपने असली 'मैं' से मिलाने के लिए है।

भगवान का नाम लेना कोई कर्म नहीं है, कोई क्रिया नहीं है । भगवन्नाम का उच्चारण करना, भगवन्नाम का जप करना पुकार है। इस तौबा से, पुकार से पुराने संस्कार, वासनाएँ मिटती हैं। अर्जुन को भगवन्नाम की ऐसी आदत पड़ गयी कि रात्रि में सोने पर उसके रोमकूपों से भगवन्नाम की ध्वनि निकलती थी। हनुमानजी के भी रोम-रोम से भगवन्नाम का उच्चारण होता था। महाराष्ट्र में संत चोखामेला हो गये। उनकी हड्डियों से भगवन्नाम की ध्वनि निकलती थी।

अपने भी कई ऐसे साधक हैं, जिनको ऐसे अनुभव होते हैं। घरों में रहनेवाली माइयों को 'हरि ॐ... हरि ॐ...' बोलने की ऐसी आदत हुई कि जप का प्रभाव शरीर में और शरीर का प्रभाव नेत्रों व हाथों के द्वारा रोटी में आने से उस पर ओंकार उभर आता है । छिंदवाड़ा आश्रम में 'हरि ॐ' जप का प्रभाव वातावरण में होने से वहाँ पैदा हुए बैंगनों में 'ॐ' की आकृति उभर आयी।

पुकार, शरणागति अथवा भगवत्प्रीति - इन सबका फल यही है कि जीव सदा के लिए दुःखों से छूट जाय और वह परम सुख उसके हृदय में प्रकट हो जाय जिसके लिए उसे मानव-जीवन मिला है। ■

सत्संग सरिता

सच्चा संबंध पहचानो

– पूज्य बापूजी

तुम्हारा सच्चा संबंध भगवान के साथ था, भगवान के साथ है और भगवान के साथ ही रहेगा । दूसरे के साथ था नहीं, है नहीं, रहेगा नहीं । संसार के संबंध ऊपर-ऊपर से हैं ।

लोग कहते हैं : 'यह मेरी पत्नी है, यह मेरा पति है, यह मेरी देवरानी है, यह मेरी जेठानी है, यह मेरी ननद है, यह मेरी सास है...' उनसे पूछा जाय कि यह तुम्हारी सास कैसे ? बोले : 'मेरी पत्नी की माँ है, मेरे पति की माँ है ।' यह तुम्हारे ससुर कैसे ? बोले : 'मेरी पत्नी के पिता हैं, मेरे पति के पिता हैं ।' तो पति के नाते सास बन गयी, ससुर बन गया, जेठ बन गया, देवरानी बन गयी । अरे, क्या-क्या बन गया !

यह तुम्हारी पत्नी कैसे ? बोले : 'मेरे साथ फेरे फिरी । फेरे फिरने से पत्नी हो गयी ।' यह भावना से ही हुआ न बेटे ! अग्नि ने तो बोला नहीं या देवरानी, जेठानी, ननद, सास के भाल पर तो लिखा नहीं कि यह देवरानी है, यह जेठानी है... तो भावना से तुम पति-पत्नी का संबंध और उसके नाते सास का, जेठ का, जेठानी का, इसका-उसका संबंध जोड़ते हो । माया के इन संबंधों का जितना-जितना विस्तार करोगे, जितना-जितना बाहर के संबंध पक्के बनाते जाओगे, उतना अधिक दुःख तुम्हें भोगना पड़ेगा क्योंकि कभी कोई बीमार होगा, कभी कोई रूठेगा तो कभी कोई मरेगा।

संसार में कौन-किसका संबंधी है और कहाँ तक ? पत्नी कब तक संबंध निभायेगी ? पति कब तक साथ निभायेगा ? साथी कब तक साथ निभायेंगे ?

साथी हैं मित्र हैं, गंगा के जलबिंदु पान तक ।
अर्धांगिनी बढ़ेगी तो केवल मकान तक ।
परिवार के सब लोग चलेंगे श्मशान तक ।
बेटा भी हक निभा देगा अग्निदान तक ।
केवल भजन ही साथ निभायेगा दोनों जहान तक ।

भगवान का संबंध दोनों जहान में तुम्हें चमका देगा । शबरी भीलन के, ध्रुव के, प्रह्लाद के दोनों जहान सफल हो गये । तुम्हारा संबंध तो शाश्वत परमात्मा से है, ये संबंधी यहीं रह जायेंगे और इस शरीर का संबंध भी कब तक ? वास्तव में तुम्हारा संबंध शरीर से भी नहीं है । यह शरीर नहीं था तब भी तुम थे और शरीर मर जायेगा तब भी तुम रहोगे । पिछले जन्म में कौन तुम्हारे पिता थे, कौन माता थी, कौन संबंधी थे ? विपत्ति आने पर कौन किसका साथी है ? और अभी के संबंध भी मृत्यु का झटका आयेगा तो कहाँ चले जायेंगे ? इसीलिए जीवात्मा का सच्चा संबंध अपने परमात्मा से है ।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी,
चेतन विमल सहज सुखराशि ।

जीव ईश्वर का अविनाशी अंश है। शरीर नाशवान है । जीवात्मा ! तुम अविनाशी हो ।

मन ! तू ज्योतिस्वरूप, अपना मूल पिछान । तू ज्योतिस्वरूप है, तू आत्मज्योति है, अपने मूल को पहचान बेटा !

तुम तो परमात्मा के अमर पुत्र हो । कभी हिन्दुस्तान में तो कभी किसी स्थान में, कभी वैकुंठ में तो कभी अतल में, कभी वितल में तो कभी रसातल में तो कभी पाताल में, कभी भूलोक में, कभी भुवर्लोक में, कभी जनलोक में तो कभी तपलोक में, कहाँ-कहाँ घूमघाम के अब इस चोले में आये हो बेटे !

संसार तेरा घर नहीं दो-चार दिन रहना यहाँ ।
कर याद अपने राज्य की स्वराज्य निष्कंटक जहाँ ॥

निष्कंटक स्वराज्य, नारायण के साथ, अपने आत्मा के साथ के संबंध को जान लो ।

संबंधियों को जीवन भर सँभालो लेकिन एक बार किसीका अपमान हो गया या कुछ ऐसा-वैसा हो गया तो उससे संबंध टूट जायेगा परंतु उस परमेश्वर के साथ एक बार संबंध जोड़ दो, फिर हजारों बार तोड़ दो तो भी वह

टूटता नहीं है ।

इस शरीर के संबंधों में ही तुम अपनी उम्र पूरी कर दोगे तो असली संबंध को कब पहचानोगे बेटे ? सच्चे संबंध का सुख कब लोगे ? सच्चे संबंध का ज्ञान कब पाओगे ? सच्चे संबंध का सामर्थ्य कब पाओगे ?

बोले : भगवान ! आप ही बताओ, आपके साथ संबंध कैसे जोड़ें ?

तुम मेरे सच्चे संबंधियों से मिलो, जो तुम्हारा-मेरा सच्चा संबंध बता देंगे । तुम उनसे जाकर पूछो : 'महाराज ! आँखों के द्वारा देखने की सत्ता कौन दे रहा है ? कानों के द्वारा जो ज्ञान मिलता है वह किसकी सत्ता से मिलता है ? जीभ की गहराई में स्वाद को परखने की धारा किसकी है ? दिल की धड़कनें किसकी सत्ता से चल रही हैं ? यह शरीर नहीं था तब भी साथ में कौन था और मर जायेंगे तो भी साथ में कौन रहेगा ?'

संत मेरे संबंधी हैं । मेरे संबंधियों से संबंध जोड़ोगे तो मेरे साथ का सत्संग हो जायेगा ।

'श्रीमद्भागवत' में आता है कि आसक्ति बड़ी बुरी बला है । संसार के संबंधों में आसक्ति बड़ी दुःखदायी है । जीव को मरने के बाद भी वह अनेकों जन्मों में भटकाती है । राजा भरत हिरण का चिंतन करते-करते मरे तो अगली योनि में हिरण बन गये । राजा नृग मरने के बाद गिरगिट हो गये लेकिन यही आसक्ति संतों से हो जाय तो सत्संग के द्वारा भगवान से मिलानेवाली और मोक्ष का द्वार बन जाती है ।

भगवान कपिल माता देवहूति से कहते हैं :

प्रसंगमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः ।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥

'विवेकीजन संग या आसक्ति को ही आत्मा का अच्छेद्य बंधन मानते हैं पर वही संग या आसक्ति जब संतों-महापुरुषों के प्रति हो जाती है तो मोक्ष का खुला द्वार हो जाती है ।' **(श्रीमद्भागवत : ३.२५.२०)**

संतों में आसक्ति, प्रीति करो। संतों के वचन आदि से, शास्त्र से प्रीति करोगे तो मुझ तक पहुँच जाओगे। भगवान के प्यारे संतों से और भगवान से संबंध जोड़ोगे तो देर-सवेर मुक्ति का अनुभव और निर्लेपता का आनंद पाओगे। कर्म में कुशलता आ जायेगी।

जैसे संसार की चीजें पैदा होती दिखती हैं, बढ़ती हैं, क्षीण होती हैं और नष्ट होती हैं, वैसे ही शरीर भी पैदा होता है, बढ़ता है, बूढ़ा होता है, बीमार होता है और मरता है । तो संसार की जात और तुम्हारे शरीर की जात एक हुई ।

भगवान ने यह जाग्रत की सृष्टि बनायी है और तुम्हारा आत्मा भी सपने में कितना-कितना बना लेता है तो आत्मा एवं परमात्मा की जात एक हुई । तो हम परमात्मा के हैं न ! भगवान को कह दो कि 'ठाकुरजी ! तुम चाहे कृष्ण-कन्हैया होकर आओ, चाहे रामजी होकर आओ, चाहे शिवजी होकर आओ लेकिन तुम हो हमारी जात के ही । तुम सूर्यवंशी होओ, चाहे चंद्रवंशी होओ लेकिन हम तुम्हारे वंश के हैं महाराज !'- ऐसा ठाकुरजी को बोला करो । 'बोलो हैं कि नहीं ? बताओ ना... बताओ ना... ओ बाँकेबिहारी ! ओ गोविंदजी ! ओ गोपालजी ! ओ रामजी ! ओ शिवजी ! ओ साँवलिया सेठ ! तुम अमर आत्मा हो तो हम भी तुम्हारी जात के हैं ना ! तुम हमारे हो ना...'- ऐसा करके भगवान के साथ का अपना संबंध याद रखो । इससे नये-नये भाव उठेंगे, नया-नया ज्ञान-प्रकाश होगा, आनंद आयेगा ।

दुनिया के संबंधों का चिंतन करोगे तो नयी-नयी मुसीबतें आयेंगी, नये-नये विकार आयेंगे, नयी-नयी चिंताएँ आयेंगी, नये-नये बंधन आयेंगे और भगवान का चिंतन करोगे तो भीतर नया-नया रस पैदा होगा, नया-नया ज्ञान आयेगा, नया-नया आनंद आयेगा । मौज-ही-मौज हो जायेगी । भगवान के साथ संबंध जोड़ लो बस ! वास्तव में भगवान के साथ संबंध जोड़ना नहीं है, वह तो है ही, केवल उसकी स्मृति करनी है, और क्या ! भगवान का 'होना' बड़ी बात नहीं है, वह तो सबमें है लेकिन भगवान का ज्ञान होना, भगवान की स्मृति होना बड़ी बात है । ■

सत्संग सुधा

बुद्धि के छः प्रकार

-पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

बुद्धि छः प्रकार की होती है :

एक होती है तामसी बुद्धि।

अर्थात् अधर्म को धर्म और धर्म को अधर्म समझती है, पाप को पुण्य और पुण्य को पाप समझती है, सज्जन लोगों को मूर्ख तथा मांस-मच्छी खाने व दारू पीनेवाले, शराबी, कबाबी, धोखेबाज, बदमाश को होशियार समझती है।

शराब पीयो, पान-मसाला खाओ, कबाब खाओ, फास्टफूड खाओ, डिस्को में जाओ, परस्त्री-गमन करो, किसीसे भी मित्रता करो और मजा लो । 'चाहे जो करो, चाहे जो खाओ, चाहे जहाँ जाओ; मजे में रहो, मजे से जीयो। यही तो जिंदगी है !' - यह तामसी बुद्धिवाले लोगों की पहचान होती है । तामसी बुद्धि अपने लिए, परिवार के लिए व समाज के लिए देर-सबेर मुसीबत है।

दूसरी होती है राजसी बुद्धि।

और चाहिए-और चाहिए... आगे-पीछे का कोई हिसाब नहीं कि जो है वह भी छोड़कर मरना है। खपे जा रहे हैं भोग में, संग्रह में, धन में और वाहवाही में। किसीने खुशामद की तो फूल जायेंगे, किसीने निंदा की तो गाँठ बाँधकर बस, बदला लेने के लिए मौका ढूँढ़ते रहेंगे। बेचारे व्यर्थ में तनाव में पचते रहते हैं। यह राजसी बुद्धिवालों का हाल है।

तीसरी होती है सात्त्विक बुद्धि।

जो धर्म को धर्म, अधर्म को अधर्म, खुशामद को खुशामद, निंदा को निंदा, स्तुति को स्तुति और यह सब निंदा-स्तुति शरीर की होनेवाली है इसको ठीक-ठीक जानती है। सात्त्विक बुद्धि अपने लिए व औरों के लिए हितकारी, सुखकारी होती है, भगवत् अनुगामिनी होती है । उसमें संसार की मिथ्या वासना का महत्त्व नहीं होता बल्कि सत्य, प्रेम, उदारता, शुद्ध आहार-व्यवहार, सत्कर्म का महत्त्व होता है । सात्त्विक बुद्धि में ठीक-ठीक सूझता है कि सुख भी सपना है, दुःख भी सपना है, मान भी सपना है, अपमान भी सपना है। सब बीतता जाता है फिर भी जो नहीं बीतता वह मेरा आत्मा सत्य है - ऐसा थोड़ा-थोड़ा जानती है वह बुद्धि सात्त्विक बुद्धि है।

चौथी होती है आत्मप्रसादजा बुद्धि।

यह सात्त्विक बुद्धि से भी और ऊँची होती है। सत्संग व गुरुमंत्र जप की साधना के द्वारा यह विकसित होती है। आत्मप्रसादजा बुद्धि में राग-द्वेष, इन्द्रियों के आकर्षण का प्रभाव कम हो जाता है। सूझबूझ के कारण चित्त में अपने-आप समाधान का सुख मिलता रहता है, सुखदायी विचार पैदा होते हैं, सुखदायी निर्णय होते हैं। सात्त्विक खाते-पीते, सोचते हैं तथा जप-ध्यान करते हैं तो बुद्धि में आत्मा-परमात्मा का प्रसाद आता है और आत्मप्रसादजा बुद्धि मिल जाती है। आत्मप्रसादजा बुद्धि किसी-किसीकी होती है !

आत्मप्रसादजा बुद्धिवाले को दिव्य स्फुरण होने लगते हैं, ध्यान होने लगता है, अन्तःप्रज्ञा का प्रकाश आने लगता है, सद्गुरु से और सद्गुरु के वचनों से उसकी आत्मीयता होने लगती है। मंत्र जपनेवाले के जीवन में गुरु के वचनों को समझने की कुशल बुद्धि आ जाती है और गुरु के दिव्य अनुभव से वह भीतर-ही-भीतर सहमत होता चला जायेगा। बुद्धि में कुछ

गंभीरता, कुछ सूझबूझ, कुछ सुयोग्यता, कुछ सुसंस्कार और कुछ आत्मसुख टिमटिमाने लगेगा।

पाँचवीं होती है ईश्वरप्रसादजा, भगवत्प्रसादजा बुद्धि।

जो भगवान को अपना व अपनेको भगवान का, गुरु को अपना व अपनेको गुरु का मानती है।

वफाई के दो तरीके हैं आजमा के देख ले।
बन जा उसीका या उसको अपना बना के देख ले।

यह बात सात्त्विक बुद्धिवाले को समझ में आ जाय तो उसकी बुद्धि पाँचवीं ऊँचाई तक जा पहुँचती है, जिसके बारे में भगवान ने कहा :

भजतां प्रीतिपूर्वकम्। ददामि बुद्धियोगं तं...

'मुझे प्रीतिपूर्वक भजनेवाले भक्तों को मैं वह बुद्धियोग (तत्त्वज्ञानरूप योग) देता हूँ।' **(गीता : १०.१०)**

भगवत्प्रसादजा बुद्धि अद्‌भुत होती है। इस बुद्धिवाले के द्वारा भारी चमत्कार हो जाते हैं और उस भक्त को पता तक नहीं चलता, वह अपने में अभिमान भी नहीं लाता। भगवत्प्रेम में बहे नामदेवजी के दो आँसुओं से सूखे कुएँ में छलोछल पानी भर गया, उनकी पुकार ने मरी हुई गाय को जिंदा कर दिया। यह भगवत्प्रसादजा बुद्धिवाले के लक्षण हैं।

शांत रहने से, मौन रहने से ईश्वरप्रसादजा बुद्धि में बल आता है। संयम होने से बुद्धि प्रखर होती है और चिन्मय आत्मा में विश्रांति पाने से बुद्धि बुद्धि नहीं बचती, फिर उसे 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' बोलते हैं। किस समय क्या करना, क्या बोलना, वस्तु-परिस्थिति का क्या अर्थ समझना - यह अपने-आप अक्ल आ जाती है।

ईश्वरप्रसादजा बुद्धि की सुरक्षा होती रहे। जैसे किसीसे हाथ न मिलाना, जिस किसीके बर्तन में न खाना, जिस किसीके बिस्तर पर - तकिये पर सिर न रखना, ताकि उसके हलके स्पंदन तुमको नीचे न गिरायें। जब तक ईश्वरप्राप्ति नहीं होती, तब तक सँभल-सँभल के कदम रखना। ईश्वरप्राप्ति के बाद भी कई संत अपने चरण नहीं छुआते, हम भी नहीं छुआते।

छठी होती है तत्त्वबुद्धि।

तत्त्व में जो अखंडता है, एकता है, एकरसता है उससे बुद्धि पूर्ण भर जाय। तत्त्वबुद्धि अर्थात् ब्रह्मविद्या से पूर्ण बुद्धि। ब्रह्मविद्या वह विद्या है जो सभी बंधनों से, दुःखों से मुक्त कर दे - **सा विद्या या विमुक्तये।** भगवान जिससे भगवान हैं, मैं जिससे मैं हूँ, वह ब्रह्म ही मेरा वास्तविक स्वरूप है।

प्रज्ञानं ब्रह्म - बुद्धि में जो आनंद आता है, ज्ञान आता है वह उस ब्रह्म की सत्ता से ही है और वह ब्रह्म मैं ही हूँ। **अयमात्मा ब्रह्म** - ब्रह्म ही आत्मा है।

गुरु शिष्य को कहते हैं : **तत्त्वमसि** - तू वही है। जिस ईश्वर को, ब्रह्म को तू खोज रहा है तू वही है। वहाँ तो कोई-कोई विरला पहुँचता है। अर्जुन के पास ईश्वरप्रसादजा बुद्धि तो थी फिर भी दुःख का उन्मूलन नहीं हुआ। जब ईश्वर के उपदेश को आत्मसात् किया तो अर्जुन की बुद्धि तत्त्वबुद्धि बन गयी। गुरु की कृपा से आसुमल (पूज्य बापूजी) को भी उस तत्त्वबुद्धि का प्रसाद मिला।

प्रचेता (राजा प्राचीनबर्हि के दस पुत्र) अपने पिता की आज्ञा से जब तपस्या के लिए निकले तब उन्हें मार्ग में भगवान महादेव के दर्शन हुए। प्रचेताओं ने उन्हें प्रणाम किया। शिवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें 'योगादेश' (रुद्रगीत) नामक स्तोत्र बताया और उसके जप द्वारा भगवान नारायण को प्रसन्न करने का उपदेश दिया। प्रचेताओं ने समुद्र में खड़े रहकर तद्नुसार तपस्या की, भगवान नारायण प्रकट हुए। बोले : ''प्रचेताओ ! मैं तुम पर पूर्ण प्रसन्न हूँ, वर माँगो।''

बुद्धिमान प्रचेताओं ने अपनी सात्त्विक और भगवत्प्रसादजा बुद्धि का परिचय दिया कि ''जगदीश्वर ! आप मोक्ष का मार्ग दिखानेवाले और स्वयं पुरुषार्थस्वरूप हैं। आप हम पर प्रसन्न हैं इससे बढ़कर हमें और क्या चाहिए ? बस, हमारा अभिष्ट वर तो आपकी प्रसन्नता

ही है। फिर भी हम एक वर आपसे अवश्य माँगते हैं । हमें आपके प्रेमी भक्तों का संग प्राप्त होता रहे। हमने समाहित चित्त से जो कुछ अध्ययन किया है, निरन्तर सेवा-शुश्रूषा करके गुरु, ब्राह्मण व वृद्धजनों को प्रसन्न किया है तथा दोषबुद्धि त्यागकर श्रेष्ठ पुरुष, सुहृद्गण, बन्धुवर्ग एवं समस्त प्राणियों की वन्दना की है और अन्नादि को त्यागकर दीर्घकाल तक जल में खड़े रहकर तपस्या की है, वह सब आप सर्वव्यापक पुरुषोत्तम के सन्तोष का कारण हो - यही वर माँगते हैं।''

भगवान नारायण प्रसन्न होकर बोले : ''तथास्तु।''

भगवान के आशीर्वाद से बाद में प्रचेताओं को देवर्षि नारदजी द्वारा तत्त्वज्ञान का उपदेश मिला और वे अपने आत्मा को जानकर तत्त्वबुद्धि को प्राप्त हो गये, जिसमें भगवान ब्रह्मा, विष्णु और महेश स्थित हैं उस अपने आपमें परितृप्त हुए।

आप अपनी बुद्धि को तत्त्वबुद्धि बनाने का इरादा बनाओ। इसके लिए मंत्रजप, सत्कर्म और भगवान को प्रार्थना करो । वेदांत के ग्रंथ तथा 'ईश्वर की ओर' पुस्तक पढ़ो।

'सामवेद' की 'संन्यासोपनिषद्' में लिखा है कि ॐकार का प्रतिदिन १२,००० जप करो तो एक साल के अंदर आपको तत्त्वबुद्धि अर्थात् ब्रह्मविद्या प्रकटानेवाली बुद्धि प्राप्त हो जायेगी। ■

ज्ञाननिष्ठ श्री

(गतांक से आगे)

एक दिन कहीं नहर के किनारे खिचड़ी पक रही थी। श्री छोटेजी ब्रह्मचारी किसी ब्राह्मण का घर न मिलने पर स्वयं पका लिया करते थे। हँडिया में खिचड़ी पक रही थी कि इतने में वर्षा आ गयी। एक अनजान व्यक्ति ने आकर हँडिया उठा ली और ओट में रख दी । उस बेचारे को मालूम नहीं था कि ये मेरा स्पर्श किया हुआ नहीं खायेंगे। छोटेजी ब्रह्मचारी, जिनका नाम लीलानन्द है, भूखे रह गये और गणेशजी उन्हें दिखा-दिखाकर खिचड़ी खा गये । उनके मन में जाति-पाँति का कोई भेद नहीं था । अद्वैतनिष्ठ महात्मा श्री उग्रानन्दजी की रहनी का प्रभाव उन पर स्पष्ट देखने में आता था । मैं कभी-कभी हँसी में पूछ लेता : ''अवधूतजी ! सृष्टि कैसे हुई ?'' हमेशा एक ही उत्तर होता : ''सृष्टि बिल्कुल है ही नहीं, कभी हुई ही नहीं, कभी होगी भी नहीं । एक शुद्ध-बुद्ध, मुक्त आत्मा ही अद्वितीय ब्रह्म है।'' इतने मौजी थे कि एक बार अमृतसर में उनकी हँडिया टूट गयी तो दूसरी लेने के लिए चुनार आये । उन्हें चुनार की हँडिया बहुत पसन्द थी ।

वे मस्तमौला इतने थे कि क्षण में हँसें, क्षण में रोयें । क्षण में आदर करें तो क्षण में ललकार दें । वे कभी मठीय, मण्डलीय, महात्माओं को भला-बुरा कहने लगते कि ये संग्रही-परग्रही, रागी-द्वेषी, वेदांत से अनभिज्ञ हैं तो कभी भिक्षु शंकरानन्दजी पर भी बरस पड़ते कि वे मठेश्वरों, महन्तों की निन्दा क्यों करते हैं ? जिसकी जैसी मर्जी हो रहे । किसीका कोई ठेका है । इस मिथ्या प्रपंच में क्या अच्छा, क्या बुरा !

हम लोगों में से कभी कोई ध्यान-भजन के लिए बैठ जाता तो वे जोर से हँसकर 'अष्टावक्र गीता' का श्लोक बोलते थे :

त्यजैव ध्यानं सर्वत्र मा किंचिद्धृदि धारय ।
आत्मा त्वम्मुक्त एवासि किं विमृश्य करिष्यसि ॥ (१५.२०)

छोड़ो ध्यान, तुम स्वयं मुक्त हो ।

अयमेव हि ते बन्धः समाधिमनुतिष्ठसि । (१.१५)

अपने स्वरूप पर आस्था न होकर किसी साधन-साध्य पर, ध्यान-समाधि पर आस्था होना भी बंधन ही है ।

किसीने कहा : 'अवधूतजी ! चलिये, आज द्वैत-अद्वैत का शास्त्रार्थ हो रहा है । बड़े-बड़े विद्वान इकट्ठे हुए हैं ।'

अवधूतजी बोलते :

अद्वैतं केचिद् इच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे ।
समं तत्त्वं न विन्दन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम् ॥

द्वैत-अद्वैत भी मतवाद ही हैं । जो द्वैत-अद्वैत दोनों मतों का प्रकाशक,

गणेशानन्द 'अवधूत'

संत चरित्र

- स्वामी श्री अखंडानंद सरस्वती

स्वयं-प्रकाश अधिष्ठान है, वही सत्य है, वही आत्मा है ।

एक बार उनके पुत्र श्री हरिप्रसाद रस्तोगी धानापुर से वृन्दावन आये । अवधूतजी ने उनकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया । १०-५ दिन आश्रम में रहे । फिर किसीसे कहकर उन्होंने दूध का प्रबन्ध कर दिया कि वह अवधूतजी के लिए रोज दूध दे दिया करे । कुछ दिन तक यह क्रम चला परंतु जब अवधूतजी को मालूम पड़ा तो मुझ पर बहुत बिगड़े । दूध तो बन्द ही कर दिया और स्वयं कुछ दिनों के लिए वृन्दावन छोड़कर चले गये । इसका फल यह हुआ कि उनके परिवार के लोगों ने उनके साथ सम्पर्क रखने का फिर से कोई प्रयास नहीं किया । उनका भाव था कि हम लोग नहीं आयेंगे तो वे स्वामीजी के पास वृन्दावन में तो रहेंगे । उनके परिवार के लोग धानापुर गाँव में प्रतिष्ठित एवं सम्पन्न हैं ।

अवधूतजी इस ढंग से रहते थे कि कोई उनके विशेष सम्पर्क में न आये । वे भोजन के समय मेरे साथ बहुत छेड़छाड़ करते थे । आकर पास बैठ जाते और कहते कि 'अपनी थाली में से ही मुझे खाने को दो ।' प्रेमानन्द 'दादा' को यह बात पसन्द नहीं थी । श्री छोटेजी ब्रह्मचारी उन्हें इसलिए नापसन्द करते थे कि वे कर्मकाण्ड के अनुसार स्पृश्यास्पृश्य नहीं मानते थे । दूसरे लोग उनके द्वारा भक्ति-भगवंत की उपेक्षा-सी होती देखकर अलग रहा करते थे । श्री उड़िया बाबा एवं श्री हरिबाबा महाराज के भक्त यह देखकर उनसे बातचीत नहीं करते थे कि वे दोनों को प्रणाम नहीं करते थे । प्रणाम तो वे मेरे सिवाय और किसीको करते ही नहीं थे । हाथ नहीं जोड़ते थे । 'ॐ नमो नारायणाय' भी नहीं बोलते थे । उनका कहना था कि आत्मा-ही-आत्मा है, आत्मा के सिवाय और सब मिथ्या प्रतीति है । कौन किसको प्रणाम करे !

मैं संन्यास लेने से पूर्व ही 'कल्याण' का सम्पादन विभाग छोड़ आया था परंतु मेरे द्वारा 'श्रीमद्भागवत' का जो अनुवाद हुआ था और उस पर शोधपूर्ण प्रबन्ध लिखे गये थे, उनका प्रकाशन तो भागवतांक के रूप में हो चुका था परंतु वह पाठकों को इतना पसन्द आया था कि उसको श्लोकों के साथ प्रकाशित करना उपयुक्त समझा गया । वे लोग मुझे वृन्दावन से ले गये । साथ-साथ अवधूतजी भी वहाँ गये । वे वहाँ भी भिक्षा माँगकर खा लेते थे । दिन भर चुपचाप अपनी मौज में रहते । कभी-कभी खेलते भी थे, भाईजी श्री हनुमानप्रसादजी के दौहित्र चि. सूर्यकान्त एवं चन्द्रकान्त को अपने पास बुला लेते । छोटे-छोटे बच्चों से कहते : 'पद्मासन लगाओ । पीठ की रीढ़ सीधी करो । हाथ घुटनों पर रखो । अधखुली आँख से बैठे रहो । हिलना मत, देखना मत ।' बच्चे इसका मजा लेते । अवधूतजी बच्चों से कहते : 'इसका नाम समाधि है ।' जब बच्चे अपनी माँ या नानी के पास जाते और कोई पूछता कि 'वे क्या कर रहे थे ?' बच्चे जवाब देते कि 'वे समाधि लगवा रहे थे ।' सब लोग हँसते थे परंतु प्रबुद्ध व्यक्ति यह समझते थे कि समाधि एवं विक्षेप इसी प्रकार के अध्यारोप हैं । वहाँ के लोग अवधूतजी को हाथ जोड़ते तो वे जोर से बोल देते : **'शिवोऽहम्-शिवोऽहम्'** । किसीसे वहाँ भी उनका मेलजोल नहीं हुआ ।

वे स्वतन्त्र एवं स्वावलम्बी रहे । कुटिया नहीं थी, पैसा नहीं था । शिष्य-शिष्या नहीं थे । उम्र लगभग ८५ वर्ष की हो चुकी थी । फिर भी वे अपना सब काम स्वयं करते थे । वृन्दावन के लोग उनमें कोई रुचि नहीं लेते थे । मुजफ्फरनगर के श्री परमेश्वर दयाल, श्री हरीशचन्द्र सेवा करने की दृष्टि से उन्हें अपने सत्संग-भवन में ले गये । फिर वे बरसों तक वहीं रहे परंतु मृत्युपर्यन्त यही बोलते रहे कि दृश्य कहाँ है ? देह कहाँ है ? शरीर में रोग एवं अशक्ति आ जाने पर भी वे यही कहते : **'शिवोऽहम्-शिवोऽहम्'** । सत्संगियों ने आग्रह कर-करके पूछा कि 'आपको क्या तकलीफ है ?' वे बोलते कि 'तकलीफ की सत्ता ही नहीं है ।' किसीने पूछा : 'आपके शरीर का अन्तिम संस्कार कैसे किया जाय ?' उन्होंने कह दिया : 'संस्कार, विकार कुछ नहीं, **शिवोऽहम्** । नाम-रूप टूट गये, तत्त्व तो तत्त्व है ही ।' ■

(समाप्त)

(संत एकनाथजी जयंती : १० मार्च २००७)

संत एकनाथजी महाराज

श्री एकनाथजी महाराज एकनिष्ठ गुरुभक्त थे। एकनाथजी का जन्म चैत्र कृष्ण षष्ठी वि.सं. १५९० (सन् १५३३) में हुआ था। उनके जन्म के कुछ समय पश्चात् ही उनके माता-पिता का देहावसान हो गया। तब उनके दादा चक्रपाणिजी ने उनका पालन-पोषण किया। एकनाथजी बाल्यकाल से ही बड़े बुद्धिमान और श्रद्धावान थे। संध्या, हरि-भजन, पुराण-श्रवण, ईश्वर-पूजन आदि में उनकी बड़ी प्रीति थी। आनन्दमग्न होकर कभी-कभी हाथ में करताल लेकर अथवा कन्धे पर करछुल (भोजन परोसने के काम आनेवाला बर्तन) या ऐसी ही कोई चीज वीणा की भाँति रखकर वे भजन करते। कभी पत्थर सामने रखकर उस पर फूल चढ़ाते व भगवन्नाम-संकीर्तन करते हुए नृत्य करते। जब गाँव में भागवत की कथा होती तब पूरी तन्मयता के साथ उसे सुनते। इतनी छोटी उम्र में भी वे त्रिकाल संध्या-वन्दन करना कभी चूकते नहीं थे। स्तोत्र-पाठ, प्रातः-सायं भगवान एवं गुरुजनों का वन्दन आदि नियम-निष्ठा में भी वे तत्पर रहते थे।

जिनका चित्त सम हो गया है, उनके आगे साँप, बिच्छू, चीता, शेर आदि हिंसक प्राणी भी क्रूरता भूलकर आनन्दमग्न होने लगते हैं।

इन सबका परिणाम यह हुआ कि भगवत्प्रेम के रस से सराबोर उनके जीवन में भगवान के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान पाने की जिज्ञासा पैदा हुई। उनके बाल मन में बार-बार यह विचार आने लगा कि 'जैसे ध्रुव और प्रह्लाद को भगवान की प्राप्ति करानेवाले सद्गुरु नारदजी मिले, वैसे समर्थ सद्गुरु मुझे कब मिलेंगे ?'

एक दिन १२ वर्षीय एकनाथ शिवालय में हरिगुण गाते हुए बैठे थे। रात्रि का चौथा पहर शुरू होने पर उनके हृदय में आकाशवाणी हुई कि 'देवगढ़ में जनार्दन पंत नामक एक सत्पुरुष रहते हैं। उनके पास जाओ वे तुम्हें कृतार्थ करेंगे।' एकनाथ देवगढ़ गये, वहाँ उन्हें श्री जनार्दन पंत के दर्शन हुए। गद्गद होकर एकनाथजी ने अपना शरीर गुरुचरणों में अर्पण किया। वे घड़ियाँ संसार की सुवर्णतम घड़ियाँ होती हैं जब सद्गुरु का सत्शिष्य से मिलन होता है क्योंकि इसी संगम से जनहित की पावन गंगा का उदय होता है।

गुरुद्वार पर रहकर एकनाथजी गुरुसेवा में लग गये। गुरु सोकर उठें इससे पहले वे जग जाते। जो सेवा सामने दिख जाती उसे आज्ञा की बाट जोहे बिना कर डालते। रात को गुरुजी के चरण दबाते, कभी पंखा झलते। गुरुजी जब समाधि लगाते तब वे द्वार पर खड़े हो जाते। गुरुदेव की समाधि में किसी प्रकार का विक्षेप न हो इसका ध्यान रखते। गुरु-गृह में और भी कई सेवक थे पर एकनाथजी किसीकी राह न देखकर स्वयं ही बड़े प्रेम, उत्साह व तत्परता से सेवाकार्यों में लगे रहते। उनके लिए गुरुजी का संतोष ही स्वसंतोष था, गुरुजी के शब्द ही शास्त्र थे,
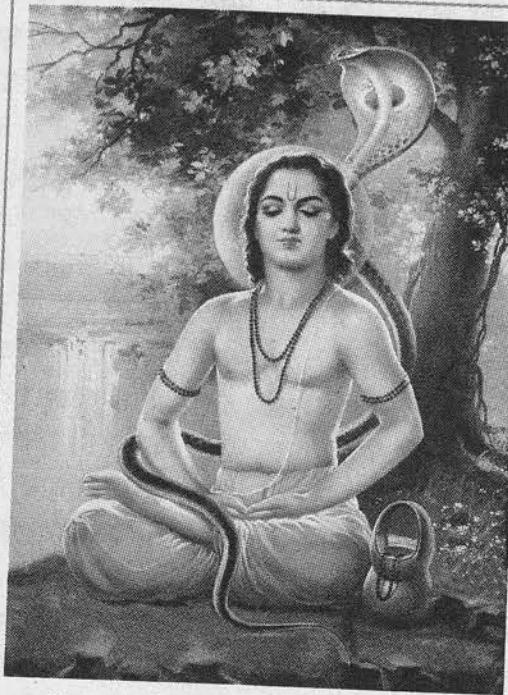
गुरुद्वार पर रहकर एकनाथजी गुरुसेवा में लग गये। गुरु सोकर उठें इससे पहले वे जग जाते। जो सेवा सामने दिख जाती उसे आज्ञा की बाट जोहे बिना कर डालते।

गुरुद्वार ही नंदनवन था तथा गुरुजी की मूर्ति ही परमेश्वर-विग्रह था। **गुरुर्साक्षात् परब्रह्म** में उनकी दृढ़ निष्ठा थी। लगातार छः वर्षों तक की अविराम सेवा से प्रसन्न होकर एक दिन गुरुजी ने उन्हें अनुष्ठान करने की आज्ञा दी। उसे शिरोधार्य कर एकनाथजी अनुष्ठान में लग गये।

एक दिन वे समाधि लगाये हुए थे। एक भयंकर काला सर्प फुफकारता हुआ उनके बदन से लिपट गया। एकनाथजी के स्पर्श से वह हिंसक भाव भूल गया व उनके मस्तक पर फन फैलाकर झूमने लगा। जिनका चित्त सम हो गया है, उनके आगे साँप, बिच्छू, चीता, शेर आदि हिंसक प्राणी भी क्रूरता भूलकर आनन्दमग्न होने लगते हैं। स्वामी रामतीर्थजी का जीवन भी इस बात की गवाही देता है।

वह साँप फिर एकनाथजी का संगी ही बन गया। वह नित्य एकनाथजी के पास आने लगा। जब वे समाधि लगाते तब वह उनके शरीर से लिपटकर मस्तक पर फन फैलाकर झूमने लगता तथा उनके समाधि से जगने के संकेत मिलते ही चला जाता। एकनाथजी को इसकी कोई खबर नहीं थी। उनके लिए दूध लेकर आनेवाले किसान ने एक दिन एकनाथजी से लिपटे साँप को देख लिया और चीख पड़ा। शीघ्र ही एकनाथजी समाधि से उठे तथा साँप को जाते हुए देखा।

इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए एकनाथजी ने एक अभंग लिखा : 'हमें दंश करने को काल आया पर आते ही कृपालु हो गया। यह अच्छी जान-पहचान हो गयी। इससे चित्त अच्युत में जा मिला। देह में जो सन्देह था वह दूर हो गया और काल से अवकाश हो गया। 'एका' (एकनाथजी) की जनार्दन से जो भेंट हुई उससे आने-जाने के चक्कर से ही छुट्टी मिल गयी।'

अनुष्ठान पूरा करके सब हाल गुरु को कह सुनाया। खूब प्रसन्न होकर गुरुजी ने उन पर आशीर्वाद के पुष्प बरसाये। उन्हें यह समझते देर न लगी कि अब मेरा एका निर्द्वन्द्व नारायण में पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुका है।

इसके बाद एकनाथजी 'एकनाथजी महाराज' के रूप में पूजित हुए। उन्होंने 'एकनाथी भागवत' जैसे ग्रंथ द्वारा समाज में परमात्म-रस की धारा प्रवाहित की। वे कहते हैं :

'गुरु ही माता, पिता, स्वामी और कुलदेवता हैं। गुरु बिना और किसी देवता का स्मरण नहीं होता।

शरीर, मन, वाणी और प्राण से गुरु का ही अनन्य ध्यान हो, यही गुरुभक्ति है। प्यास जल को भूल जाय, भूख मिष्टान्न को भूल जाय और गुरु-चरण-संवाहन करते हुए निद्रा भी भूल जाय। मुख में सद्गुरु का नाम हो, हृदय में सद्गुरु का प्रेम हो, देह में सद्गुरु का ही अहर्निश अविश्रान्त कर्म हो।

गुरु-सेवा में ऐसा मन लगे कि स्त्री, पुत्र, धन भी भूल जाय, अपना मन भी भूल जाय, यह भी ध्यान न हो कि मैं कौन हूँ ?'

सद्गुरु का सामर्थ्य और सत्सेवा का सुख कैसा है, इस विषय में एकनाथजी महाराज ने कहा :

'सद्गुरु जहाँ वास करते हैं वहीं सुख की सृष्टि होती है। वे जहाँ कहते हैं वहीं महाबोध (ब्रह्मज्ञान) स्वानन्द से रहता है। उन सद्गुरु के चरण-दर्शन होने से उसी क्षण भूख-प्यास चली जाती है। फिर कोई कल्पना ही नहीं उठती। अपना वास्तविक सुख गुरुचरणों में ही है।'

गुरुसेवा की महिमा गाते हुए वे अपना अनुभव बताते हैं : 'सेवा में ऐसी प्रीति हो गयी कि उससे आधी घड़ी भी अवकाश नहीं मिलता। सेवा में आलस्य तो रह ही नहीं गया क्योंकि इस सेवा से विश्रान्ति का स्थान ही चला गया। प्यास जल भूल गयी, भूख मिष्टान्न भूल गयी। जम्हाई लेने की भी फुरसत नहीं रही। सेवा में मन ऐसे रम गया कि 'एका' जनार्दन की शरण में लीन हो गया।' ■

प्रेरक

प्रसंग

भौ सागर रा तरन कूं, एकौ नाम अधार।

– संत रविदासजी

संत रविदास (रैदास) का जन्म वि.सं. १४३३ (१३७६ ई.) में माघ की पूर्णिमा को हुआ था। उनकी माता उन्हें बालपन से ही महात्माओं के दर्शन-सत्संग हेतु ले जाया करती थीं। पूर्वजन्म की की हुई भक्ति, गुरुसेवा तथा इस जन्म में बचपन से ही किये सत्संग के कारण रविदासजी की आध्यात्मिकता में गहन रुचि हो गयी। नौ वर्ष की नन्ही उम्र में ही परमात्मा की भक्ति का इतना गहरा रंग चढ़ गया कि उनके माता-पिता भी चिंतित हो उठे। उन्होंने उनका मन संसार की ओर आकृष्ट करने के लिए उनकी शादी करा दी और उन्हें बिना कुछ धन दिये ही परिवार से अलग कर दिया फिर भी रविदासजी अपने पथ से विचलित नहीं हुए।

जिहवा भजै हरि नाम नित,

हत्थ करंहि नित काम।

'रविदास' भए निहचिंत हम,

मम चिंत करैंगे राम॥

'परमात्मा की वस्तु परमात्मा के लिए ही तैयार कर रहा हूँ।' इस भाव से वे जूते बनाने और बेचने का अपना परम्परागत कार्य तो करने लगे लेकिन उनके हृदय की करुण पुकार यही थी कि 'हे प्रभु ! कृपा करके मुझे संतों की संगति, संत-कथा का रस तथा संतों के प्रति प्रेम प्रदान करना।'

उन्हें रामानंद स्वामीजी से दीक्षा मिली। संत कबीरजी के साथ भी वे सत्संग करते थे। इस जन्म की साधना के साथ-साथ पूर्वजन्म की गुरुभक्ति एवं साधना के फलस्वरूप उन्हें शीघ्र ही परमात्मज्ञान हो गया। उनके संतत्व का प्रभाव दूर-दूर तक फैलने लगा। सज्जन, पुण्यात्मा लोग उनके विचारों से प्रभावित होने लगे और उनके सत्संग द्वारा अपना कल्याण करने लगे परंतु कुछ वर्णाभिमानी, जो संत रविदासजी की आध्यात्मिक ऊँचाई को आँक न सके, उन्हें रविदासजी का सुयश देखकर ईर्ष्या होने लगी। उन्होंने काशी के राजा से शिकायत की कि रविदासजी धर्मोपदेश दे रहे हैं।

रविदासजी परमात्मा के सच्चे उपासक हैं या उनके विरोधी – इसकी परीक्षा लेने के लिए राजा ने दरबार में भगवान की एक मूर्ति मँगवायी और कहा : 'जो अपने भक्ति-सामर्थ्य द्वारा इस मूर्ति को स्वयं की ओर आकृष्ट करेगा, वही परमात्मा का सच्चा उपासक है और उसे ही धर्मोपदेश देने का अधिकार है।'

रविदासजी के आलोचकों ने अनेक स्तोत्र पढ़े, मंत्रोच्चार किये पर

सांची प्रीत बिनु राम न पाया। स्तोत्रपाठ के साथ प्रेम की पुकार भी होनी चाहिए। जब रविदासजी की बारी आयी तो उन्होंने बड़े आर्तभाव से भगवान से प्रार्थना की, मार्मिक पद गाये तथा प्रभु-प्रेम की विह्वलता में उनकी आँखों से आँसुओं की धाराएँ बह चलीं।

ऐसी जनि करि हो महाराज।

दूरि मांही तुम बइठै देखौ, बिगरत है यौं काज।...

अपने ज्ञानी भक्त की पुकार सुन भगवान उनकी गोद में आकर बैठ गये। यह दृश्य देखकर गद्गद होते हुए राजा ने रविदासजी के चरणों में मस्तक झुका दिया।

रविदासजी सदैव परमात्मा के भजन, सुमिरन, नाम-जप में लगे रहते। भगवन्नाम की महिमा गाते हुए वे कहते हैं कि प्रभु का नाम एक छोटी-सी चिनगारी है, जो पापों के बड़े-से-बड़े ढेर को जलाकर नष्ट कर देती है, अमृत की एक बूँद है जो जन्मों की प्यास मिटा देती है। नाम के प्रताप से आवागमन के चक्र और संसार के जंजालरूपी सर्प का असर नहीं पड़ता।

जनम मरनु अरु जग जाला,

नाम परताप न बिआपहिं व्याला।

काल भी जिसके चरणों में शीश झुकाता है, उस परमात्मा को मैं एक क्षण के लिए भी नहीं भुला सकता क्योंकि

भौ सागर रा तरन कूं, एकौ नाम अधार।

नाम ही ज्ञान का मूल और मुक्ति का दरवाजा है। नाम-सुमिरन ही परमात्मारूपी चिंतामणि की प्राप्ति कराता है। अतः

रविदास कभउं नहिं छांड़िये, राम नाम पतवार।

यह संसार एक अथाह रौद्र दरिया के समान है, जिसमें असंख्य जीव राग-द्वेष, शोक-मोह रूपी ऊँची-ऊँची लहरों के थपेड़े खा रहे हैं। इससे पार होने के लिए भगवन्नाम को अपनी नौका बना लो और सद्गुरु को उसकी पतवार बना लो, जो दीक्षा एवं कृपावर्षा द्वारा इस नामरूपी नाव को चैतन्यता प्रदान करते हैं।

रविदास गुरु पतवार है, नाम नाव करि जान।
गुरु ग्यांन दीपक दिया, बाती दइ जलाय।
रविदास हरि भगति कारनै, जनम मरन विलमाय।।

गुरुदेव ने हमारे हृदय में ज्ञानरूपी दीपक प्रज्वलित कर दिया है। रविदासजी कहते हैं कि मुक्तिदाता भगवान श्रीहरि की भक्ति के फलस्वरूप जन्म-मृत्यु का फेरा अब समाप्त हो गया है।

हरि गुर साध समान चित, नित आगम तत मूल।
इन बिच अंतर जिन परौ, करवत सहन कबूल ।।

परमात्मा, सद्गुरु और साधु-संतों का हृदय एक समान होता है। यह शास्त्रों का मूल तत्त्व है। इनके बीच कोई अंतर नहीं समझना चाहिए। इस सत्य का अनुसरण करने में यदि आरे से चीरे जाने की यातना भी सहनी पड़े तो उसे सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिए। ■

'भगवान का नाम चाहे जैसे लिया जाय - किसी बात का संकेत करने के लिए, हँसी करने के लिए अथवा तिरस्कारपूर्वक ही क्यों न हो, वह संपूर्ण पापों को नाश करनेवाला होता है। पतन होने पर, गिरने पर, कुछ टूट जाने पर, डँसे जाने पर, बाह्य या आन्तर ताप होने पर और घायल होने पर जो पुरुष विवशता से भी 'हरि' यह नाम का उच्चारण करता है, वह यम-यातना के योग्य नहीं।'

(श्रीमद्भागवत : ६.२.१४,१५)

शास्त्र वचनामृत

राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम् ।
यत्प्रभावादहं राम ब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान् ।।

'हे राम ! जिसके प्रभाव से मैंने (वाल्मीकि ने) ब्रह्मर्षि-पद प्राप्त किया है, आपके उस नाम की महिमा कोई किस प्रकार वर्णन कर सकता है ?' **(अध्यात्म रामायण, अयोध्या काण्ड : ६.६४)**

जिह्वाग्रे वसते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
स विष्णुलोकमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।

'जिसकी जिह्वा के अग्रभाग पर 'हरि' ये दो अक्षर वास करते हैं, वह पुनरावृत्ति रहित श्री विष्णुधाम को प्राप्त होता है ।'

(नारद पुराण, पूर्व भाग, प्रथम पाद : ११.१०१)

मत्कथाश्रवणे पाठे व्याख्याने सर्वदा रतिः ।
मत्पूजापरिनिष्ठा च मम नामानुकीर्तनम् ।।
एवं सततयुक्तानां भक्तिरव्यभिचारिणी ।
मयि संजायते नित्यं ततः किमवशिष्यते ।।

'मेरी (भगवान की) कथा के सुनने, पढ़ने और उसकी व्याख्या करने में सदा प्रेम करना, मेरी पूजा में तत्पर रहना, मेरा नाम-कीर्तन करना - इस प्रकार जो निरंतर मुझमें लगे रहते हैं, उनकी मुझमें अविचल भक्ति अवश्य हो जाती है। फिर बाकी ही क्या रहता है ?'

(अध्यात्म रामायण, अरण्य काण्ड : ४.४९-५०)

अभक्ष्य-भक्षण करने पर उससे उत्पन्न पाप के विनाश के लिए पाँच दिन तक गोमूत्र, गोमय, दूध, दही तथा घी का आहार करने का वर्णन 'वसिष्ठ स्मृति' में किया गया है :

गोमूत्रं गोमयं चैव क्षीरं दधि घृतं तथा ।
पंचरात्रं तदाहारः पंचगव्येन शुद्ध्यति ।।

(वसिष्ठ स्मृति : ३७०)

संत वाणी

ब्रह्मचर्य-पालन के नियम

(गतांक से आगे)

ऋषियों का कथन है कि ब्रह्मचर्य ब्रह्म-परमात्मा के दर्शन का द्वार है, उसका पालन करना अत्यंत आवश्यक है । इसलिए यहाँ हम ब्रह्मचर्य-पालन के कुछ सरल नियमों एवं उपायों की चर्चा करेंगे :

(१) ब्रह्मचर्य तन से अधिक मन पर आधारित है । इसलिए मन को नियंत्रण में रखो और अपने सामने ऊँचे आदर्श रखो ।

(२) आँख और कान मन के मुख्यमंत्री हैं। इसलिए गंदे चित्र व भद्दे दृश्य देखने तथा अभद्र बातें सुनने से सावधानीपूर्वक बचो।

(३) मन को सदैव कुछ-न-कुछ चाहिए । अवकाश में मन प्रायः मलिन हो जाता है । अतः शुभ कर्म करने में तत्पर रहो व भगवन्नाम-जप में लगे रहो ।

(४) 'जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन ।'- यह कहावत एकदम सत्य है । गरम मसाले, चटनियाँ, अधिक गरम भोजन तथा मांस, मछली, अंडे, चाय, कॉफी, फास्टफूड आदि का सेवन बिल्कुल न करो ।

(५) भोजन हलका व चिकना (स्निग्ध) हो । रात का खाना सोने से कम-से-कम दो घंटे पहले खाओ ।

(६) दूध भी एक प्रकार का भोजन है । भोजन और दूध के बीच में तीन घंटे का अंतर होना चाहिए ।

(७) वेश का प्रभाव तन तथा मन दोनों पर पड़ता है । इसलिए सादे, साफ और सूती वस्त्र पहनो । खादी के वस्त्र पहनो तो और भी अच्छा है । सिंथेटिक वस्त्र मत पहनो । खादी, सूती, ऊनी वस्त्रों से जीवनीशक्ति की रक्षा होती है व सिंथेटिक आदि अन्य प्रकार के वस्त्रों से उसका ह्रास होता है ।
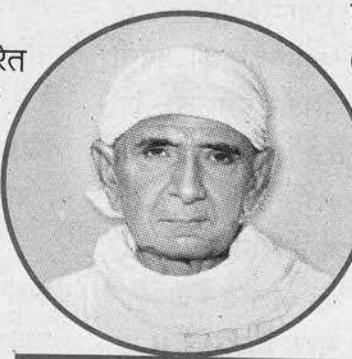
ब्रह्मलीन
स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज
के प्रवचन से

(८) लँगोटी बाँधना अत्यंत लाभदायक है । सीधे, रीढ़ के सहारे तो कभी न सोओ, हमेशा करवट लेकर ही सोओ । यदि चारपाई पर सोते हो तो वह सख्त होनी चाहिए ।

(९) प्रातः जल्दी उठो । प्रभात में कदापि न सोओ । वीर्यपात प्रायः रात के अंतिम प्रहर में होता है ।

(१०) पान मसाला, गुटखा, सिगरेट, शराब, चरस, अफीम, भाँग आदि सभी मादक (नशीली) चीजें धातु क्षीण करती हैं । इनसे दूर रहो ।

(११) लसीली (चिपचिपी) चीजें जैसे - भिंडी, लसोड़े आदि खानी चाहिए । ग्रीष्म ऋतु में ब्राह्मी बूटी का सेवन लाभदायक है । भीगे हुए बेदाने और मिश्री के शरबत के साथ इसबगोल लेना हितकारी है ।

(१२) कटिस्नान करना चाहिए । ठंडे पानी से भरे पीपे में शरीर का बीच का भाग पेटसहित डालकर तौलिये से पेट को रगड़ना एक आजमायी हुई चिकित्सा है । इस प्रकार १५-२० मिनट बैठना चाहिए । आवश्यकतानुसार सप्ताह में एक-दो बार ऐसा करो।

(१३) प्रतिदिन रात को सोने से पहले ठंडा पानी पेट पर डालना बहुत लाभदायक है ।

(१४) बदहजमी व कब्ज से अपनेको बचाओ ।

(१५) सेंट, लवेंडर, परफ्यूम आदि से दूर रहो । इन्द्रियों को भड़कानेवाली किताबें न पढ़ो, न ही ऐसी फिल्में और नाटक देखो।

(१६) विवाहित हो तो भी अलग बिछौने पर सोओ ।

(१७) हररोज प्रातः और सायं व्यायाम, आसन तथा प्राणायाम करने का नियम रखो।

मनुष्य-जाति का कट्टर दुश्मन : तम्बाकू

परम पिता परमात्मा की चेतन सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी मनुष्य है क्योंकि उसके पास सत्य-असत्य, हित-अहित और लाभ-हानि को जानने-समझने के लिए विशेषकर बुद्धिरूपी अलौकिक साधन है। मनुष्य बुद्धि के साधन की कसौटी से इस लोक व परलोक के अनुकूल पूँजी जुटा सकता है। बुद्धि की शुद्धि का आधार आहार-शुद्धि है । 'जैसा आहार वैसी डकार ।' सत्त्वगुणी कल्याण-मार्ग का पथिक होता है । रजोगुणी संसार की विविध वासनाओं में आसक्त रहता है परंतु तमोगुणी अधःपतन के मार्ग पर जाता है ।

तम्बाकू अर्थात् तमोगुण की खान

आजकल मनुष्य तम्बाकू के पीछे पागल बनकर सर्वनाश के मार्ग पर दौड़ रहा है । मनुष्य-जाति को मानो तम्बाकू का संक्रामक रोग लगा है। बीड़ी, सिगरेट और चिलम में भरकर तम्बाकू की आग मनुष्य जी भर के फूँक रहे हैं, भगवद्भजन करने के साधनरूप मुख व जीभ को त्रासजनक रूप से दुर्गंध से भरे रखते हैं। गला, छाती, पेट, जठरा व आँतों को सड़ा देते हैं । खून को कातिल जहर से भर देते हैं । दाँतों पर घिस के दाँत सड़ा देते हैं । चबाकर जीभ, मसूड़े, तालू व कंठ के अमीरस को विषमय कर डालते हैं। आत्मदेव के देहमन्दिर को नष्ट-भ्रष्ट करके बरबादी के पथ पर दौड़ रहे हैं।

अरे मेरे बुद्धिशाली भाइयो ! फूँकने, खाने, चबाने, दाँतों में घिसने, सूँघने आदि के व्यसनों द्वारा इस देश के करोड़ों नहीं अरबों रुपयों का धुँआ करने का पाप क्यों कर रहे हो ? पसीने की कमाई को इस प्रकार गँवाकर सर्वनाश को क्यों आमंत्रित कर रहे हो ?

शरीर, मन, बुद्धि और प्राण को पवित्र तथा पुष्ट करनेवाले शुद्ध दूध, दही, छाछ, मक्खन और घी तो आज दुर्लभ हो गये हैं । इनकी अपूर्ति में तम्बाकू का कातिल जहर शरीर में डालकर पवित्र मानव देह को क्यों अपवित्र बना रहे हो ?

तम्बाकू में निकोटीन नाम का अति कातिल घातक जहर होता है । इससे तम्बाकू के व्यसनी कैंसर व क्षय जैसे जानलेवा रोग के भोग बनकर सदा के लिए 'कैन्सल' हो जाते हैं । आजकल ये रोग अधिक फैल रहे हैं । तम्बाकू के व्यसनी अत्यंत तमोगुणी, उग्र स्वभाव के हो जाने से क्रोधी, चिड़चिड़े व झगड़ालू बन जाते हैं । दूसरों की भावनाओं का उन्हें लेशमात्र भी ध्यान नहीं रहता।

अरे, मेरे पावन व गरीब देश के वासियो ! महान पूर्वजों द्वारा दिये गये दिव्य, भव्य संस्कारों के वारिसदारो ! चेतो ! चेतो !! तम्बाकू भयानक काला नाग है । तम्बाकू के कातिल नागपाश से बचो ! अपने शरीर, मन, बुद्धि, धन, मान, प्रतिष्ठा को बचाओ !! सर्वनाशक तम्बाकू से बचो, अवश्य बचो !!! ■

धूम्रपान है दुर्व्यसन

धूम्रपान है दुर्व्यसन, मुँह में लगती आग ।
स्वास्थ्य, सभ्यता, धन घटे, कर दो इसका त्याग ॥
बीड़ी-सिगरेट पीने से, दूषित होती वायु ।
छाती छननी सी बने, घट जाती है आयु ॥
रात-दिन मन पर लदी, तम्बाकू की याद ।
अन्न-पान से भी अधिक, करे धन-पैसा बरबाद ॥
कभी फफोले भी पड़ें, चिक[1] जाता कभी अंग ।
छेद पड़ें पोशाक में, आग राख के संग ॥
जलती बीड़ी फेंक दी, लगी कहीं पर आग ।
लाखों की संपदा जली, फूटे जम के भाग ॥
इधर नाश होने लगा, उधर घटा उत्पन्न ।
खेत हजारों फँस गये, मिला न उनसे अन्न ॥
तम्बाकू के खेत में, यदि पैदा हो अन्न ।
पेट हजारों के भरें, मन भी रहे प्रसन्न ॥
करें विधायक कार्य, यदि बीड़ी के मजदूर ।
तो झोंपड़ियों से महल, बन जायें भरपूर ॥
जीते जी क्यों दे रहे, अपने मुँह में आग ।
करो स्व-पर हित के लिए, धूम्रपान का त्याग ॥

१. अचानक होनेवाला दर्द

(गतांक से आगे)

नौ योगीश्वरों के उपदेश

जो मनुष्य भगवान का भजन नहीं करते, उलटा उनका अनादर करते हैं, ऐसे पतित लोगों का क्रोध भी ऐसा होता है जैसे साँप का। बनावट और घमंड से उन्हें प्रेम होता है। वे पापी लोग भगवान के प्यारे भक्तों की हँसी उड़ाया करते हैं । वे मूर्ख बड़े-बूढ़ों की नहीं स्त्रियों की उपासना करते हैं। यही नहीं, वे परस्पर इकट्ठे होकर उस घर-गृहस्थी के संबंध में ही बड़े-बड़े मनसूबे बाँधते हैं, जहाँ का सबसे बड़ा सुख स्त्री-पुरुष स्पर्श, सहवास में ही मानते हैं मूर्ख । जो विकारों के आवेग में थोड़ा-सा सुख जैसा लगता है, बाद में तो थकान, पराधीनता, जड़ता, शक्तिहीनता देता है, उसीमें अपनेको थकाये-खपाये जा रहे हैं । वे कर्म का रहस्य न जाननेवाले मूर्ख केवल अपनी जीभ को संतुष्ट करने और पेट की भूख मिटाने - शरीर को पुष्ट करने के लिए बेचारे पशुओं की हत्या करते हैं। धन-वैभव, कुलीनता, विद्या, दान, सौन्दर्य, बल और कर्म आदि के घमंड से अंधे हो जाते हैं तथा वे दुष्ट भगवत्प्रेमी संतों तथा ईश्वर का भी अपमान करते रहते हैं।

राजन् ! वेदों ने इस बात को बार-बार दुहराया है कि भगवान आकाश के समान नित्य-निरन्तर समस्त शरीरधारियों में स्थित हैं। वे ही अपने आत्मा और प्रियतम हैं परंतु वे मूर्ख इस वेदवाणी को तो सुनते ही नहीं और केवल बड़े-बड़े मनोरथों की बात आपस में कहते-सुनते रहते हैं और अहं पोषते रहते हैं । (वेद विधि के रूप में ऐसे ही कर्मों को करने की आज्ञा देता है, जिनमें मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं होती।) संसार में देखा जाता है कि मैथुन, मांस और मद्य की ओर प्राणी की स्वाभाविक प्रवृत्ति हो जाती है। तब उसे उसमें प्रवृत्त करने के लिए विधान तो हो ही नहीं सकता।

ऐसी स्थिति में विवाह, यज्ञ और सौत्रामणि यज्ञ के द्वारा ही जो उनके सेवन की व्यवस्था दी गयी है, उसका अर्थ है लोगों की उच्छृंखल प्रवृत्ति का नियंत्रण, उनका मर्यादा में स्थापन । वास्तव में उनकी ओर से लोगों को हटाना ही श्रुति को अभीष्ट है। धन का एकमात्र फल है धर्म क्योंकि धर्म से ही परम तत्त्व का ज्ञान और उसकी निष्ठा - अपरोक्ष अनुभूति सिद्ध होती है तथा निष्ठा में ही परम शांति है परंतु यह कितने खेद की बात है कि लोग उस धन का उपयोग घर-गृहस्थी के स्वार्थों में या कामभोग में ही करते हैं और यह नहीं देखते कि हमारा यह शरीर मृत्यु का शिकार है तथा वह मृत्यु किसी प्रकार भी टाली नहीं जा सकती। सौत्रामणि यज्ञ में भी सुरा को सूँघने का ही विधान है, पीने का नहीं। यज्ञ में पशु का आलंभन (स्पर्शमात्र) ही विहित है, हिंसा नहीं। इसी प्रकार अपनी धर्मपत्नी के साथ मैथुन की आज्ञा भी विषयभोग के लिए नहीं, धार्मिक परम्परा की रक्षा के निमित्त संतान उत्पन्न करने के लिए ही दी गयी है परंतु जो लोग अर्थवाद के वचनों में फँसे हैं, विषयी हैं, वे अपने इस विशुद्ध धर्म को जानते ही नहीं।

जो इस विशुद्ध धर्म को नहीं जानते, वे घमंडी वास्तव में तो दुष्ट हैं परंतु समझते हैं अपनेको श्रेष्ठ । यह शरीर मृतक शरीर है। इसके संबंधी भी इसके साथ ही छूट जाते हैं। जो लोग इस शरीर से तो प्रेम की गाँठ बाँध लेते हैं और दूसरे शरीरों में रहनेवाले अपने ही आत्मा एवं सर्वशक्तिमान भगवान से द्वेष करते हैं, उन मूर्खों का अधःपतन निश्चित है। जिन लोगों ने आत्मज्ञान सम्पादन करके कैवल्य मोक्ष नहीं प्राप्त किया है और जो पूरे-पूरे मूढ़ भी नहीं हैं, वे अधूरे न इधर के हैं और न उधर के। वे अर्थ, धर्म, काम - इन तीनों पुरुषार्थों में फँसे रहते हैं, एक क्षण के लिए भी उन्हें शांति नहीं मिलती। वे अपने हाथों अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे हैं। ऐसे ही लोगों को आत्मघाती कहते हैं। अज्ञान को ही ज्ञान माननेवाले उन आत्मघातियों को कभी शांति नहीं मिलती, उनके कर्मों की परम्परा कभी शांत नहीं होती। काल भगवान सदा-सर्वदा उनके मनोरथों पर पानी फेरते रहते हैं। उनके हृदय की जलन, विषाद कभी मिटने के नहीं। राजन् ! जो लोग अन्तर्यामी भगवान श्रीकृष्ण से विमुख हैं, वे अत्यंत परिश्रम करके गृह, पुत्र, मित्र और धन-सम्पत्ति इकट्ठी करते हैं परंतु उन्हें अंत में सब कुछ छोड़ देना पड़ता है एवं न चाहने पर भी विवश

महान भगवद्भक्त प्रह्लाद

(गतांक से आगे)

महर्षि अजगर और प्रह्लादजी का संवाद

प्रह्लादजी बड़े ही तत्त्वजिज्ञासु थे। उनकी सभा में विद्वानों का खासा संग्रह था। इसके सिवा समय-समय पर वे स्वयं भी ऋषियों के आश्रमों में जाकर तत्त्वोपदेश सुनते और अपनी शंकाओं का निराकरण कराते थे। साधु-संग स्वाभाविक ही उन्हें बहुत प्रिय था।

एक दिन प्रह्लादजी कुछ तत्त्वोपदेश सुनने के उद्देश्य से तपोभूमि की ओर जा रहे थे कि मार्ग में ही महर्षि अजगर मिल गये। महर्षि अजगर को देख वे वहीं ठहर गये और सादर प्रणाम कर उनसे पूछने लगे : ''हे ब्रह्मन् ! आपको देखने से मालूम होता है कि आप तपोनिष्ठ, योग्य विद्वान हैं, विषय-वासनाओं से रहित एवं स्वस्थ हैं। आप दम्भादि विकारों से मुक्त, शुद्ध और दयावान हैं, इन्द्रियों को जीतनेवाले हैं। किसी कार्य का आरम्भ करना उचित नहीं समझते। आप किसीमें भी दोष नहीं देखते। आप सत्यवक्ता, मृदुभाषी और प्रतिभावान हैं। पूर्व पक्ष तथा उत्तर पक्ष को भलीभाँति समझनेवाले, बड़े मेधावी और तत्त्ववेत्ता विद्वान हैं।

भगवन् ! इन सब गुणों के होते हुए भी आप बालकों के समान चारों ओर क्यों घूमते-फिरते हैं ? हम देखते हैं कि आपको न तो किसी वस्तु, परिस्थिति के लाभ की इच्छा है और न किसी वस्तु के प्राप्त होने पर आप असन्तुष्ट ही होते हैं; सभी विषयों से सदा तृप्त की भाँति रहते हैं। किसी विषय की कभी अवज्ञा नहीं करते। काम, क्रोध आदि विकारों के प्रबल वेग लोगों के चित्त को हरण कर रहे हैं परंतु आप विरक्त के सदृश धर्म, अर्थ और काम युक्त कार्यों में भी निर्विकार-चित्त प्रतीत होते हैं। यह क्या बात है ? तपोधन ! आप धर्म और अर्थ का अनुष्ठान नहीं करते तथा कार्य में भी प्रवृत्त नहीं होते एवं रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि इन्द्रिय-विषयों का अनादर करके कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि का अभिमान भी नहीं रखते, प्रत्युत साक्षी के सदृश विचरण कर रहे हैं। इसका क्या रहस्य है ? त्यागमूर्ति ब्रह्मन् ! यह आपका कैसा तत्त्वदर्शन (ब्रह्मज्ञान, आत्मसाक्षात्कार) है, कैसी वृत्ति है, कैसा शास्त्रज्ञान है और यह किस प्रकार का धर्मानुष्ठान है ? यदि आप उचित समझें तो इन प्रश्नों के उत्तर देने की शीघ्र कृपा करें।''

प्रह्लादजी की जिज्ञासा देखकर महर्षि अजगर ने उनके प्रश्नों के उत्तर में बड़े ही मधुर वचनों से कहा : ''हे प्रह्लाद ! आप ज्ञानी हैं, विद्वान हैं और ज्ञानियों की संगति करनेवाले हैं, फिर भी आपको मेरी वृत्ति देखकर जो अचरज हुआ इसमें कोई अचरज की बात नहीं है। **राजकाज का संबंध ही ऐसा होता है, इसके द्वारा यथार्थ ज्ञान के प्रकाश में कुछ धुँधलापन-सा आ जाया करता है।**

प्रह्लाद ! कारणरहित चित्त, अचित्त से युक्त अद्वितीय परब्रह्म परम पुरुष से संसार की उत्पत्ति, ह्रास एवं नाश के विषय की आलोचना विद्वान लोग किया करते हैं किंतु मैं इनकी आलोचना करके ही हर्षित तथा दुःखित नहीं होता। स्वभाव के कारण वर्तमान प्रवृत्तियों और स्वभाव सें रत सारे संसार को समझना चाहिए। मैं इसी सिद्धान्त को मानकर ब्रह्मलोक की प्राप्ति से भी प्रसन्न नहीं होता। हे प्रह्लाद ! जिन प्राणियों का विनाश निश्चित है, उन वियोग-परायण प्राणियों के संयोग और विनाश को विचार की दृष्टि से देखिये। इस प्रकार के किसी भी विषय में मैं मन नहीं लगाता। जो लोग सगुण पदार्थों को नाशवान समझते हैं और जगत की उत्पत्ति तथा उसके लय के तत्त्व को जानते हैं, उनके लिए संसार में कोई कार्य अवशेष नहीं है। ■

(क्रमशः)

होकर घोर नरक में जाना पड़ता है। (भगवान का भजन न करनेवाले विषयी पुरुषों की यही गति होती है।)

योगेश्वरों के सत्संग को सुनकर राजा निमि ने अपना विवेक जगाया, परमात्मप्राप्ति का अपना काम बनाया। आप यह पढ़कर रख देंगे या बार-बार पढ़ते-पढ़ते प्रभु को कातर प्रार्थना करेंगे। बार-बार इन विचारों में अपने मन को रमाकर रामरस पाइये, शाश्वत रस को पाइये, अपनी अमरता को पाइये।

इन कथाओं का पूरा फायदा तो तब हुआ जब आप भी राजा निमि की नाईं लग जायें। ■

(क्रमशः)

(छत्रपति शिवाजी जयंती : ७ मार्च २००७)

अद्भुत पराक्रमी एक प्रजाहितदक्ष सम्राट

सत्रहवीं शताब्दी में हिन्दुस्तान में मुगल शासकों का अत्याचार, लूटमार बढ़ती जा रही थी । हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाया जा रहा था। मुगलों के अतिरिक्त पुर्तगालियों व अंग्रेजों ने भी भारतभूमि में अपने कदम जमाने शुरू कर दिये थे । परिस्थितियों के आगे घुटने टेक रहा हिन्दू समाज नित्यप्रति राजनैतिक तथा धार्मिक दुरावस्था की ओर अग्रसर हो रहा था । सबसे भयंकर प्रहार हमारी संस्कृति पर हो रहा था । धन व सत्ता की हवस की पूर्ति में लगे ये हैवान हमारी बहू-बेटियों की इज्जत भी सरेआम नीलाम कर रहे थे । ऐसी विषम परिस्थिति में वर्तमान महाराष्ट्र के पूना जिले में वि.सं. १६८७ की चैत्र कृष्ण तृतीया को शिवाजी महाराज का आविर्भाव शाहजी के घर में हुआ।

उनकी शासन-व्यवस्था में समाज की बहू-बेटियों की इज्जत-प्रतिष्ठा का विशेष ध्यान रखा जाता था। मनचले युवकों को वे कड़ी-से-कड़ी सजा देने में चूकते नहीं थे।

बचपन से ही माता जीजाबाई ने रामायण, महाभारत, उपनिषदों व पुराणों से धैर्य, शौर्य, धर्म व मातृभूमि के प्रति प्रेम आदि की कथा-गाथाएँ सुनाकर उनमें इन सद्गुणों के साथ-साथ अदम्य प्राणबल फूँक दिया था । जिसके परिणामस्वरूप १६ वर्ष की नन्ही अवस्था में ही उन्होंने हिन्दू स्वराज्य को स्थापित कर उसका विस्तार करने का ध्रुव संकल्प ले लिया और अपने सुख-चैन, आराम की परवाह किये बिना धर्म, संस्कृति व देशवासियों की रक्षा के लिए अनेकों जोखिम उठाते हुए विधर्मी ताकतों से लोहा लेने लगे । उन्होंने प्रबल पुरुषार्थ, दृढ़ मनोबल, अदम्य उत्साह एवं अद्भुत पराक्रम दिखाते हुए भारतभूमि पर फैल रहे मुगल शासकों की जड़ें हिलानी शुरू कर दीं । शत्रु उन्हें अपना काल समझते थे । वे शिवाजी को रास्ते से हटाने के लिए नित्य नये षड्यंत्र रचते रहते । छल, बल, कपट आदि किसी भी प्रकार के कुमार्ग का अनुसरण करने में उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी थी परंतु शत्रुओं को पता नहीं था कि **जिसका संकल्प दृढ़ व इष्ट मजबूत होता है उसका अनिष्ट दुनिया की कोई ताकत नहीं कर सकती। शिवाजी विवेक की जगह विवेक, बल की जगह बल तथा इन दोनों से परे की परिस्थितियों में ईश्वर एवं गुरु निष्ठा का सहारा लेते हुए शत्रुओं को मुँहतोड़ जवाब देते।**

बचपन में माँ ने संतों के प्रति श्रद्धा के जो बीज वीर शिवाजी के मन-मस्तिष्क में बोये थे, उन्होंने आगे चलकर विराट रूप धारण किया । इस महान योद्धा के मुखमंडल पर शूरवीरता एवं गंभीरता झलकती थी परंतु हृदय ईश्वर एवं संत-निष्ठा के नवनीत से पूर्ण था। समय-समय पर वे संतों-महापुरुषों की शरण में जाते और उनसे ज्ञानोपदेश प्राप्त करते, जीवन का सार क्या है इसे जानने का यत्न करते।

एक दिन वे संत तुकारामजी के दर्शन-

शिवाजी महाराज गुरु-उपदेश को शिरोधार्य कर 'मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं' पर अंतिम क्षणों तक अडिग रहे।

सत्संग व आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु देहू ग्राम में गये। वे इन ईश्वरनिष्ठ महापुरुष से इतने प्रभावित हुए कि इनसे कृपा की याचना करने लगे परंतु दूरदृष्टिसंपन्न संत तुकारामजी ने उन्हें विभिन्न कलाओं से संपन्न लोकसंत समर्थ रामदासजी की शरण में जाने की सलाह दी। संत तुकारामजी के एक अभंग में भी इसका उल्लेख मिलता है :

राजा छत्रपती । ऐकावें वचन ।
रामदासीं मन । लावीं वेगें ॥१॥
रामदास स्वामी । सोयरा सज्जन।
त्यासी तन मन । अर्पी बापा ॥२॥
मारुती अवतार । स्वामी प्रगटला ।
उपदेश देईल । तुजलागी ॥३॥

हे छत्रपति राजा ! मेरी बात मानो और तुरंत समर्थ रामदासजी की भक्ति में अपना मन लगाओ। रामदास स्वामी शरण में आये हुए भक्तों को आश्रय देनेवाले सज्जन संत हैं। अतः उन्हें अपना तन-मन-धन अर्थात् सर्वस्व अर्पण करो। रामदास साक्षात् मारुति के अवतार हैं, वे तुम्हें उपदेश देंगे इसमें कोई संदेह नहीं है।

धर्मनिष्ठ शिवाजी समर्थ रामदासजी के चरणों में गये व उनसे अनुग्रह की याचना की। समर्थजी ने उन्हें विधिवत् मंत्रदीक्षा दी और कहा : ''इस संसार में आया हुआ हर व्यक्ति सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा है, अतः तुम भी वही परमात्मा हो। मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव न करते हुए तुम्हें राजधर्म का पालन करना चाहिए।''

शिवाजी महाराज गुरु-उपदेश को शिरोधार्य कर **'मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं'** पर अंतिम क्षणों तक अडिग रहे।

एक बार शिवाजी महाराज ने अपने गुरुदेव से राज्य के लिए शुभ चिह्न माँगा। तब समर्थजी ने अपने शरीर का लपेटा हुआ भगवा वस्त्र उन्हें दिया। महाबुद्धिमान वीर शिवाजी ने उस वस्त्र को अपने स्वराज्य की निशानी बनाया। वह भगवा ध्वज मराठा राज्य के अंत तक उसकी निशानी बना रहा।

शिवाजी महाराज के नजदीक के तथा दूर के अधिकांश रिश्तेदार मुस्लिम शासकों की सेना में थे। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में समर्थजी ने लोगों में शिवाजी के प्रति विश्वास जगाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया, जिसके फलस्वरूप धीरे-धीरे मराठा युवक वीर शिवाजी के सैन्य में शामिल होने लगे। अपने सुख-चैन की परवाह किये बिना कर्मयोगी शिवाजी अनवरत राज्य क्रांति में लगे रहे। कई हारे हुए हिन्दू राज्यों को पुनः जीतकर उन्होंने एकछत्र राज्य की स्थापना की। ऐसा संघर्षपूर्ण जीवन बिताते हुए भी उन्होंने अपने सद्गुरु समर्थजी एवं संत तुकारामजी आदि महापुरुषों की सेवा में कोई कसर नहीं छोड़ी।

वे शत्रुओं के लिए तो खतरनाक जाँबाज थे परंतु अपनी प्रजा के लिए प्रेम के अवतार थे। उनकी प्रजा के प्रति हित की भावना से गद्गद हो कभी-कभी समर्थ उन्हें 'प्रजाहितदक्ष' के नाम से सम्बोधित करते। इस प्रजाहितदक्ष सम्राट ने गाँवों के भोले-भाले, निरीह किसानों के हितों का खूब ख्याल रखा। युद्ध के लिए निकलनेवाले सैनिकों को वे खास हिदायत देते : ''रास्ते में आनेवाली जनता को किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचना चाहिए। खेतों में खड़ी फसल का पत्ता भी आपमें से किसीको छूना तक नहीं चाहिए।''

उनके हाथों परहित के अगणित कार्य अविरत होते चले गये। उनकी शासन-व्यवस्था में समाज की बहू-बेटियों की इज्जत-प्रतिष्ठा का विशेष ध्यान रखा जाता था। मनचले युवकों को वे कड़ी-से-कड़ी सजा देने में चूकते नहीं थे। फारसी के दबदबे के कारण लुप्त हो रही संस्कृत की गरिमा को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए उन्होंने संस्कृत का प्रचलन शुरू किया। जबरन मुसलमान बनाये गये हिन्दुओं का शुद्धिकरण कर उनकी पुनः हिन्दू समाज में वापसी करायी। अपने सद्गुरु एवं महापुरुषों की सेवा करते हुए वे धर्मरक्षण व प्रजा-कल्याण के पुनीत कार्य में जीवन के अंतिम क्षण तक लगे रहे। आज लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष बीत जाने पर भी शिवाजी महाराज न केवल शासकों के लिए अपितु समस्त विश्व के लोगों के लिए एक अति उज्ज्वल प्रेरणास्रोत बने हुए हैं। ■

('छत्रपति शिवाजी' व 'लोकनाथ समर्थ गुरु रामदास' से संकलित)

शरीर स्वास्थ्य

स्वास्थ्य के लिए हितकर-अहितकर

प्राचीन काल में भगवान पुनर्वसु आत्रेय ने मनुष्यों के लिए स्वभाव से ही हितकर व अहितकर बातों का वर्णन करते हुए भरद्वाज, हिरण्याक्ष, कांकायन आदि महर्षियों से कहा :

हितकर भाव

आरोग्यकर भावों में समय पर भोजन, सुखपूर्वक पचनेवालों में एक समय भोजन, आयुवर्धन में ब्रह्मचर्य-पालन, शरीर की पुष्टि में मन की शांति, निद्रा लानेवालों में शरीर का पुष्ट होना तथा भैंस का दूध, थकावट दूर करने में स्नान व शरीर में दृढ़ता उत्पन्न करनेवालों में व्यायाम सर्वश्रेष्ठ है।

वात और पित्त को शांत करनेवालों में घी, कफ व पित्त को शांत करनेवालों में शहद तथा वात और कफ को शांत करने में तिल का तेल श्रेष्ठ है।

वायुशामक व बलवर्धक पदार्थों में बला, जठराग्नि को प्रदीप्त कर पेट की वायु को शांत करनेवालों में पीपरामूल, दोषों को बाहर निकालनेवाले, अग्निदीपक व वायुनिस्सारक पदार्थों में हींग, कृमिनाशकों में वायविडंग, मूत्रविकारों में गोखरू, दाह दूर करनेवालों में चंदन का लेप, संग्रहणी व अर्श (बवासीर) को शांत करने में प्रतिदिन तक्र (मट्ठा) सेवन सर्वश्रेष्ठ है।

अहितकर भाव

रोग-उत्पादक कारणों में मल-मूत्र आदि के वेगों को रोकना, आयु घटाने में अति मैथुन, जीवनशक्ति घटानेवालों में बल से अधिक कार्य करना, बुद्धि, स्मृति व धैर्य को नष्ट करनेवालों में मद्यपान, जठरा को दूषित करने में अजीर्ण भोजन (पहले सेवन किये हुए आहार के ठीक से पचने से पूर्व ही पुनः अन्न सेवन करना), आम-दोष उत्पन्न करने में अधिक भोजन तथा रोगों को बढ़ानेवाले कारणों में विषाद (दुःख) प्रधान है।

शरीर को सुखा देनेवालों में शोक, पुंस्त्वशक्ति नष्ट करनेवालों में क्षार, शरीर के स्रोतों में अवरोध उत्पन्न करनेवाले पदार्थों में मंदक दही (पूर्ण रूप से न जमा हुआ दही) तथा वायु उत्पन्न करनेवालों में जामुन मुख्यतम है।

स्वास्थ्यनाशक काल में शरद ऋतु, स्वास्थ्य के लिए हानिकारक जल में वर्षा ऋतु की नदी का जल, वायु में पश्चिम दिशा की हवा, ग्रीष्म ऋतु की धूप व भूमि में आनूप देश (जहाँ वृक्ष और वर्षा अधिक हो, धूप कम हो, क्वचित् सूर्य-दर्शन भी दुर्लभ हों) मुख्यतम हैं।

स्वास्थ्य व दीर्घायुष्य की कामना करनेवाले व्यक्ति को चाहिए कि वह हितकर पदार्थों के सेवन के साथ-साथ अहितकर पदार्थों का त्याग करे। ■

(चरक संहिता, सूत्रस्थानम्, यज्जःपुरुषीयाध्याय : २५)

सुलभ प्रसव के लिए : मूलबंध

सगर्भावस्था में प्रसवकाल तक मूलबंध का नियमित अभ्यास करने से प्रसव सुलभता से हो जाता है। मूलबंध माना गुदा (मलद्वार) को सिकोड़कर रखना जैसे घोड़ा संकोचन करता है। इससे योनि की पेशियों में लचीलापन बना रहता है, जिससे पीड़ारहित प्रसव में सहायता मिलती है। प्रसूति के बाद भी माताओं को मूलबंध एवं अश्विनी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। अश्विनी मुद्रा अर्थात् जैसे घोड़ा लीद छोड़ते समय गुदा का आकुंचन-प्रसरण करता है, वैसे गुदाद्वार का आकुंचन-प्रसरण करना। लेटे-लेटे ५०-६० बार यह मुद्रा करने से वात-पित्त-कफ इन त्रिदोषों का शमन होता है, भूख खुलकर लगती है तथा सगर्भावस्था की अवधि में तने हुए स्नायुओं को पुनर्स्वास्थ्य पाने में सहायता मिलती है। श्वेतप्रदर (ल्यूकोरिया), योनिभ्रंश (प्रोलॅप्स) व अनियंत्रित मूत्रप्रवृत्ति के उपचार में मूलबंध का अभ्यास अत्युत्तम सिद्ध हुआ है।

भक्तों के अनुभव

सारस्वत्य मंत्र का चमत्कार

(विश्वस्तर पर प्रथम स्थान)

मेरे पुत्र सुजित (उम्र ८ साल) ने पूज्य बापूजी से सारस्वत्य मंत्र की दीक्षा ली है। वह हर रोज निष्ठापूर्वक उसका जप करता है।

अगस्त २००६ में आयोजित 'इंटरनेशनल इन्फोर्मेटिक्स ऑलम्पियाड, कम्प्यूटर' की परीक्षा में पूरे भारत और विदेश से लगभग १५००० विद्यार्थियों ने हिस्सा लिया था। उसमें सुजित ने १०० में से ९९ अंक प्राप्त किये और तीसरी कक्षा में विश्व स्तर पर प्रथम स्थान प्राप्त कर गोल्ड मेडल हासिल किया है।

सन् २००५ की दिवाली में पूज्य गुरुदेव ने सुजित की ओर देखते हुए कहा था : ''अभी इसकी पढ़ाई उत्तम ढंग से करवानी है, इस पर विशेष ध्यान दो।'' तबसे हम गुरुदेव की दी हुई सेवा समझ के सुजित की ओर विशेष ध्यान दे रहे हैं। हम सब इतना ही चाहते हैं कि गुरुदेव की कृपा से हमारी आध्यात्मिक उन्नति होती रहे, हमारे हृदय में उनके प्रति प्रेम बढ़ता रहे। अंतिम सत्य प्राप्त करने के लिए हमें सुजित के साथ अपने चरणों में रखें।

– पांडुरंग उगले, पूना (महा.)

'त्रिफला रसायन' से अद्भुत लाभ

मुझे पिछले १३ वर्षों से धुँधला दिखता था। आँखों में लालिमा व सूजन रहती थी। आँखें धूप में बिल्कुल नहीं खुलती थीं। चंडीगढ़ के पी.जी.आई. हॉस्पिटल में दीर्घ समय तक एलोपैथिक दवाइयाँ (स्टिरॉइड्स) लेने के कारण हड्डियों में दर्द होने लगा व नींद भी चली गयी। आखिर डॉक्टरों ने टी.बी. की दवाइयाँ लेने की सलाह दी परंतु मैंने नहीं लीं।

अक्टूबर २००६ के दीपावली महोत्सव पर मैंने अमदावाद आश्रम के आरोग्य केन्द्र से शरद पूर्णिमा की रात को आँखों के लिए बनायी गयी औषधि 'त्रिफला रसायन' ली। ४० दिन तक इसका विधिवत् सेवन करने से मेरी आँखें पूर्णतः स्वस्थ हो गयीं, धुँधलापन चला गया। आँखों में तीन दाग थे, वे भी चले गये। १३ वर्ष के बाद अब मैं स्पष्ट देख सकती हूँ। **– श्रीमती आशा सैनी, ऊना (हि.प्र.)**

'ऋषि प्रसाद' की सेवा से अभिभूत हृदयों के उद्गार

मेरे विद्यालय के ग्रामीण परिवेश के चार छात्र जो गत सत्र में 'ऋषि प्रसाद' के सदस्य बने, वे चारों इस पत्रिका से मिलनेवाली उद्यम व पुरुषार्थ की प्रेरणा के कारण 'राजस्थान बोर्ड' की १२वीं कक्षा की परीक्षा में उत्तम अंक प्राप्त कर यशस्वी हुए और अन्य छात्रों के लिए प्रेरणास्रोत बने।

**– लक्ष्मण सिंह पँवार, प्रधानाचार्य,
लोटीयाना, जि. अजमेर (राज.)**

हम घोर आर्थिक संकट की परिस्थिति से गुजर रहे थे। ऐसे समय में 'ऋषि प्रसाद' ने मुझे उन समस्याओं से जूझने का बल प्रदान किया, हिम्मत न हारने की प्रेरणा दी। वास्तव में 'ऋषि प्रसाद' जीवन में बल एवं नवचेतना का संचार करानेवाला रसायन (टॉनिक) ही है। मैं 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका को साक्षात् गुरुदेव का स्वरूप मानती हूँ और 'ऋषि प्रसाद' सेवादार बनकर अत्यधिक आनंद का अनुभव करती हूँ।

– किरण बहन, पटना (बिहार)

'ऋषि प्रसाद' पत्रिका बाँटकर घर बैठे सेवा का लाभ मिल रहा है, यह सोचकर आनंद होता है।

– किशनभाई कटकिया, बोरसद (गुज.)

जबसे 'ऋषि प्रसाद' बाँटने की सेवा शुरू की तबसे खुशी बढ़ने लगी, आत्मबल जगने लगा, हिम्मत बढ़ गयी और सद्गुण आने लगे। 'ऋषि प्रसाद' बाँटूँ नहीं तब तक मुझे चैन नहीं पड़ता।

**– थानाराम, नयी बस्ती,
जि. जोधपुर (राज.)**

संस्था समाचार

('ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि)

सतना (म.प्र.) में २६ जनवरी को पूज्यश्री का एक दिवसीय सत्संग संपन्न हुआ । अगले ही दिन-२७ से २८ जनवरी तक **रीवा (म.प्र.)** में पूज्यश्री की अमृतवाणी की ज्ञानगंगा बही । पूज्यश्री ने नकारात्मक चिन्तन को त्यागकर सकारात्मक चिंतन की प्रेरणा देते हुए कहा : ''दुनिया में ऐसा होना चाहिए, अमुक व्यक्ति ऐसा होना चाहिए... इसमें आप स्वतंत्र नहीं हैं लेकिन अपने-आपको वैसा बनाने में स्वतंत्र हैं । आप अपने दिल को सँवार लो तो दुनिया सँवरी हुई मिलेगी ।''

अर्धकुंभ के अवसर पर **प्रयागराज (उ.प्र.)** में १९ से २३ जनवरी तक अपने दिव्य आध्यात्मिक प्रसाद व आभामंडल से अर्धकुंभनगर को अभिभूत करने के पश्चात् ३० जनवरी को पुनः पूज्यश्री का यहाँ पदार्पण हुआ । त्रिवेणी संगम पर २ फरवरी तक चले इस 'ध्यान योग शिविर' में ज्ञान, भक्ति व योग की त्रिवेणी बही । इस दौरान समूची कुंभनगरी में विलक्षण आध्यात्मिक चेतना के प्रसार का केन्द्र बिन्दु रहा- तुलसी मार्ग के विशाल पंडाल में आयोजित यह 'ध्यान योग शिविर' । भक्तों की संख्या के विषय में क्या कहना ! पूरे कुंभ में श्रद्धालुओं की उपस्थिति की ८०-९०% संख्या पूज्य बापूजी के अध्यात्म-प्रसाद में ही लवलीन नजर आयी । प्रयागराज में अपनी आत्मस्पर्शी अमृतवाणी की वर्षा करते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''आप कभी भी यह नहीं सोचना कि मैं दुःखी हूँ, मैं परेशान हूँ, मैं मोहताज हूँ, मैं लाचार हूँ, मेरे को फलाने ने दुःख दिया...

अपने-अपने प्रारब्धवेग से, ईश्वर की करुणा-कृपा के विधान से तथा प्रकृति के प्रभाव से कर्म अनुकूल होकर सुख दे देते हैं और प्रतिकूल होकर दुःख देते हैं । फिर निमित्त चाहे कोई माई, कोई भाई अथवा सर्दी या गर्मी बने। सुख-दुःख में आपका पूर्वानुबंध भी निमित्त बनता है।

सुख और दुःख का भाव आपके हृदय में बनता है । वह भाव तो बन-बनकर चला जाता है परंतु आप गलती यह करते हैं कि उस भाव में अपनेको डुबा देते हैं कि मैं दुःखी हूँ, मैं सुखी हूँ... । 'मैं दुःखी हूँ-दुःखी हूँ'- सोचते रहते हैं तो दुःख का भाव बढ़ जाता है, स्वभाव फरियादात्मक बन जाता है । शरीर तो मरने के बाद यही रह जाता है पर स्वभाव मरने के बाद भी साथ चलता है। फिर वह नरकों में ले जाता है, दुःखों में ले जाता है।''

संभाजी नगर (महा.) में ९ से ११ फरवरी को आयोजित पूज्यश्री की ज्ञान-भक्ति वर्षा के पूर्व ७ फरवरी को श्री सुरेशानंदजी के नेतृत्व में भव्य महासंकीर्तन यात्रा निकली संभाजी नगर की गलियों में, जिसके भव्य महा संकीर्तन से हरिनाममय हुआ संभाजी नगर । 'ज्योत से ज्योत जगाओ...' आरती के साथ ही हरिनाम संकीर्तन के घोष से सारे वातावरण में उत्साह, उमंग और आध्यात्मिकता की लहर दौड़ गयी । संकीर्तन में सबसे आगे देश के नौनिहाल, भावी कर्णधार बच्चे चल रहे थे । उनके हाथों में शक्ति, भक्ति, मुक्ति, संयम, सदाचार, उद्यम, साहस, धैर्य, बुद्धि, पराक्रम से संबंधित सुवाक्य लिखे हुए सुविचार-फलक थे । उनके पीछे पीले परिधान

में सुसज्जित कन्याएँ व महिलाएँ सजे-धजे कलश लिये हुए चल रही थीं, जो कि मंगलकामना का प्रतीक है। सुसज्जित घोड़े, गाड़ियाँ, पालकी व पूज्य बापूजी के छविचित्र के बीच श्री सुरेशानंदजी अपने भक्ति-कीर्तन की छटा बिखेर रहे थे। करीब १ कि.मी. लंबी जनमेदनी की हरिनाम संकीर्तन की गूँज से पूरा संभाजी नगर (औरंगाबाद) झूम उठा। ३ वर्ष बाद संभाजी नगर की अयोध्यानगरी स्थित विशाल पंडाल में लोकलाड़ले पूज्य बापूजी के पधारते ही उपस्थित विराट श्रद्धालु-समुदाय झूम उठा। पूज्यश्री ने अपने आत्मीय अंदाज में सत्संगियों का कुशलक्षेम पूछा और फिर ब्रह्मज्ञान की सत्संग-सरिता सभीके संतप्त हृदयों को शीतलता पहुँचाने लगी। १० फरवरी का एक सत्र विद्यार्थियों के नाम रहा। इस सत्र में पूज्यश्री ने विद्यार्थियों को स्मरणशक्ति बढ़ाने के यौगिक प्रयोगों के साथ ही सुषुप्त प्रतिभा को सुविकसित करने के गुर भी बताये।

संभाजी नगर में सत्संग की पूर्णाहुति के बाद अगले ही दिन १२ फरवरी का एक दिवसीय सत्संग **मालेगाँव (महा.)** के नाम रहा। यहाँ पूज्यश्री के आगमन का एक दिलचस्प पहलू उल्लेखनीय है - गत वर्ष बड़ौदा (गुज.) में मालेगाँव समिति ने पूज्य बापूजी से सत्संग के लिए प्रार्थना की। उस समय पूज्यश्री ने मालेगाँव स्थित वडेल आश्रम के बारे में पूछताछ की। इस दौरान समिति के अध्यक्ष ने बताया : ''आश्रम में एक गाय रखी है।''

बापूजी ने पूछा : ''क्या गाय दूध देती है ?''

गाय कम उम्र होने के कारण दूध नहीं देती थी। पूज्य बापूजी मुस्कराकर बोले : ''जब गाय दूध देगी तब मैं मालेगाँव आऊँगा।''

११ फरवरी की सुबह उस गाय ने एक बछड़े को जन्म दिया और उसी रात को ११:१५ बजे पूज्य बापूजी का मालेगाँव आश्रम में पदार्पण हुआ !

महाशिवरात्रि के निमित्त ब्रह्मवेत्ता पूज्य बापूजी के पावन-प्रेरक सान्निध्य में विराट जनमेदिनी के दिलों को जोड़ता हुआ, भगवद्रस से सराबोर करता हुआ पाँच दिवसीय 'शक्तिपात ध्यान योग साधना शिविर' १४ से १८ फरवरी को **नासिक (महा.)** में संपन्न हुआ। १४ फरवरी को 'वेलेन्टाइन डे' मनाने का देश में कई स्थानों पर विरोध हुआ। पूज्यश्री ने इस पाश्चात्य गंदगी के विरोध का अभिनंदन किया। पूज्य बापूजी ने यहाँ देवदुर्लभ ब्रह्मविद्या को सरल भाषा में समझाया, इसके रहस्यों से शिविरार्थियों को अवगत कराया। साथ ही उन्होंने प्राणायाम, ध्यान आदि के अपने अनुभवयुक्त प्रयोग कराये, जिससे शिविरार्थियों में अलौकिक आनंद छा गया। लोग ध्यान की मस्ती में आनंदविभोर हो उठे। पूज्यश्री ने कहा : ''ध्यान करने के लिए कुछ करने की जरूरत नहीं है। जहाज में बैठ गये फिर तुम्हें क्या करना है ? तुम बस चुपचाप बैठे रहो।''

कुण्डलिनी योग के अनुभवनिष्ठ आचार्य पूज्य बापूजी ने अपनी नूरानी निगाहों से शक्तिपात वर्षा की और तत्क्षण ही विशाल पंडाल में बैठे हुए शिविरार्थियों में एक प्रबल भावधारा प्रवाहित हुई, सब ध्यान के आनंद में डूब गये। ध्यान की सहज मस्ती में मस्त हुए शिविरार्थियों में से कोई आनंदविभोर होकर हँसते-गाते तो कोई मौन बैठे हुए ही गुरुवर के आत्मप्रसाद का रसपान कर रहे थे।

इस 'ध्यान योग शिविर' में बड़ी संख्या में विद्यार्थी भी सम्मिलित हुए। वे अपने बहुमुखी विकास के लिए पूज्यश्री से प्रत्यक्ष मार्गदर्शन प्राप्त कर कृतकृत्य हुए। यहाँ वक्तृत्व स्पर्धा, श्लोक पठन स्पर्धा व योगासन स्पर्धा का भी आयोजन किया गया। विजेताओं को पूज्यश्री के करकमलों द्वारा पारितोषिक प्राप्त हुआ।। मध्यरात्रि तक जागरण, जप-ध्यान के दौरान पूज्यश्री की पावन उपस्थिति से गोदावरी तट स्थित आश्रम परिसर में महाशिवरात्रि वास्तव में महा पावन रात्रि बन गयी। अन्त में १८ फरवरी की शाम लाखों भाविकों ने विदाई की करुण वेला में सद्गुरुदेव को अश्रुपूरित नेत्रों से विदाई दी।

२४ व २५ फरवरी को **जलगाँव (महा.)** में पूज्य गुरुवर का प्रथम पदार्पण हुआ। स्वर्ण की गुणवत्ता के लिए प्रसिद्ध होने से स्वर्णनगर, केले की बहुलता के लिए प्रसिद्ध होने से केले का नगर कहलानेवाले जलगाँव के श्रद्धालु अपने नगर में पूज्य गुरुवर का दर्शन-सत्संग

संस्था समाचार

प्राप्त कर गद्‌गद हो गये। पहले सत्र में ही विशाल पंडाल भक्तों की उपस्थिति से नन्हा साबित हो गया। स्थानीय लोगों के अनुसार : 'जलगाँव में किसी संत के दर्शन-सत्संग या राजनेताओं की सभाओं में इतनी भीड़ आज तक उन्होंने नहीं देखी।' पूर्वकाल में महर्षि वाल्मीकि, महर्षि कण्व, योगी चांगदेव, संत मुक्ताबाई, संत सखाराम महाराज से सेवित इस भूमि में, इस काल में ब्रह्मवेत्ता पूज्य बापूजी के पावन चरणकमल पड़ने से इस भूमि के गौरव में चार चाँद लग गये।

जलगाँव से जामनेर मार्ग पर २५ कि.मी. की दूरी पर संत मुक्ताबाई की समाधि है। पहले एदलाबाद कहा जानेवाला वह स्थान अब 'मुक्ताई नगर' के नाम से प्रसिद्ध है। संत मुक्ताबाई के जन्मदिन व समाधि के दिन वहाँ आज भी मेला लगता है। मुक्ताई नगर से २ कि.मी. की दूरी पर योगी चांगदेव का मंदिर है। इसी १४०० साल के योगी चांगदेव को बालसंत मुक्ताबाई ने ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया था।

जलगाँव से ५० कि.मी. की दूरी पर अमलनेर नामक स्थान में विट्ठलभक्त संत सखाराम की लीलाभूमि है। यहीं वृद्धावस्था के कारण पण्ढरपुर जाने में अशक्य हो जाने के कारण भगवान विट्ठल ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिये और उनके मार्गदर्शनानुसार यहीं बोरी नदी में उन्हें स्वयंभू विट्ठल मूर्ति प्राप्त हुई। पूज्य बापूजी के अनुभूति संपन्न ब्रह्मज्ञान की अमृतमयी वर्षा से इस भूमि पर एक नवीन इतिहास का सृजन हुआ।

जलगाँव से १५ कि.मी. की दूरी पर महर्षि कण्व की जन्मभूमि व समाधिस्थल है, जो उन्हींके नाम पर 'कानणदा' नाम से प्रसिद्ध है।

२५ फरवरी की दोपहर जलगाँव में सत्संग की पूर्णाहुति करके पूज्यश्री भुसावल, आमोदा, सावदा व रावेर के श्रद्धालुओं को दर्शनामृत से पावन करते हुए **बुरहानपुर (म.प्र.)** पहुँचे। यहाँ २५ फरवरी की शाम व २६ फरवरी को सत्संग सम्पन्न हुआ। यहाँ भी पूज्य गुरुवर पहली बार ही पधारे। पूज्यश्री के मुखारविन्द से प्रवाहित ज्ञान, भक्ति गंगा से संपूर्ण नगर धर्ममय नजर आया। जलगाँव की भाँति यहाँ भी श्रद्धालुओं की खूब बड़ी भीड़ उमड़ पड़ी। नन्हे पड़े विशाल पंडाल को रातोंरात बढ़ाकर बैठक व्यवस्था में वृद्धि की गयी।

भारतीय संस्कृति के संरक्षक पूज्य बापूजी के सेवकों ने १४ फरवरी के दिन वासना, अश्लीलता, असंयम, व्यभिचार और अनैतिकता के प्रतीक 'वेलेन्टाइन डे' को देशनिकाला देने हेतु भारतीय दैवी संस्कृति के सुसंस्कारों से भरपूर शुद्ध प्रेम, औदार्य, संयम और **'परस्परं भावयन्तु'** के प्रतीक, पूज्य बापूजी द्वारा प्रेरित 'मातृ-पितृ पूजन दिवस' का सामूहिक आयोजन किया। जिसमें बच्चों ने अपने माता-पिता को सर्व देवताओं और सर्व तीर्थों का प्रतीक मानकर उनकी पूजा-आरती की और उनका आशीर्वाद व स्नेह प्राप्त किया।

पूज्यश्री के कल्याणकारी वचनों पर आधारित सत्साहित्य 'युवाधन सुरक्षा, बाल संस्कार, नशे से सावधान, मन को सीख, हमारे आदर्श' आदि विद्यार्थियों में वितरित किये गये।

भारतीय दैवी संस्कृति के इस संदेश को गुजरात के वडवा, जेसावाडा, अभलोड, गांगडी, भूतरडी, जाम्बुआ, विजयागढ, दसला, बांडीबार आदि गाँवों में भी पहुँचाया गया।

रेवाड़ी (हरि.) में कंबल आदि का वितरण तथा फरीदाबाद (हरि.) में अनाज, गर्म वस्त्र एवं बर्तनों का वितरण ।

चिरमिरी जि. कोरिया (छ.ग.), बड़ा बाजार आदिवासी पाठशाला में गणवेश तथा
डूंगरिया कलां जि. अजमेर (राज.) के विद्यालय में गणवेश एवं नोटबुकों का निःशुल्क वितरण ।
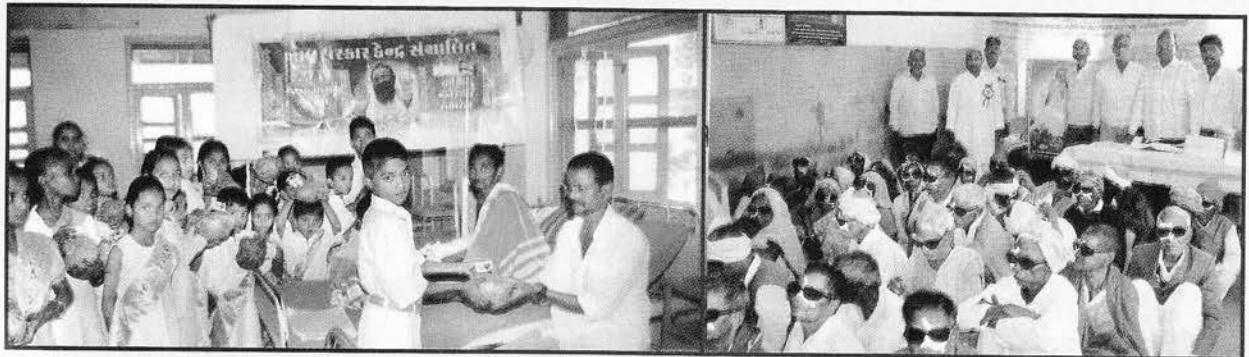
किल्ला पारडी जि. वलसाड (गुज.) में 'बाल संस्कार केन्द्र' के बच्चों द्वारा वार्षिक महोत्सव पर
अस्पताल में फल आदि बाँटे गये तथा मलाजखंड जि. बालाघाट (म.प्र.) में निःशुल्क नेत्र चिकित्सा ।
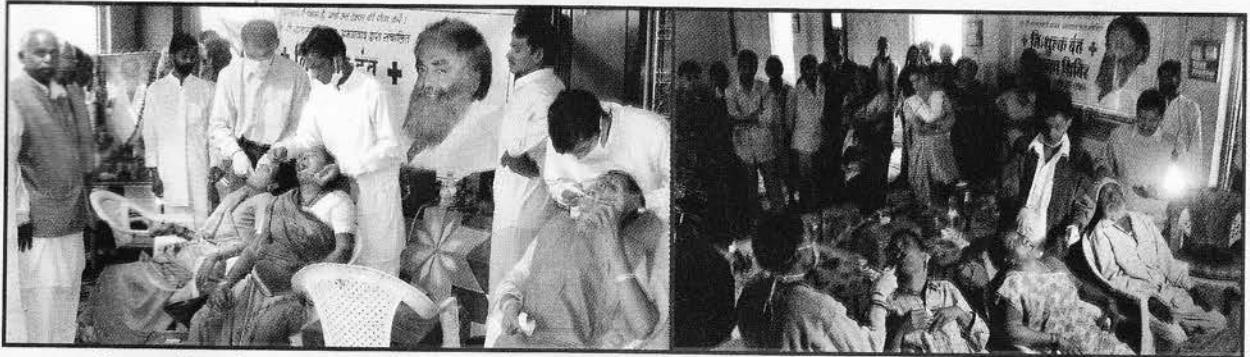
वीरपुर जि. खेड़ा (गुज.) तथा झालोद जि. दाहोद (गुज.) में निःशुल्क दंत चिकित्सा शिविर ।

क्या आपने आज अमृतपान किया है ?

1 March 2007
RNP.NO. GAMC 1132/2006-08
Licenced to Post without Pre-Payment
LIC NO. GUJ-207/2006-08.
RNI NO. 48873/91
DL (C)-01/1130/2006-08.
WPP LIC NO. U (C)-232/2006-08.
G2/MH/MR-NW-57/2006-08.
WPP LIC NO. MH/MR/14/07.
'D' NO. MH/MR/TECH - 47/4/07

ऋषियों का प्रसाद सर्वदुःखनाशक अमृत है । प्रतिदिन इसका पान करना इस कलिकाल के दुष्प्रभाव से अपनी रक्षा कर अपने जीवन को अमृतमय बनाने का सरलतम उपाय है । इस अमृत के लाखों कुंभ हर महीने घर-घर बँट रहे हैं 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के रूप में । क्या आप इसका अमृतपान करने-करवाने में भागीदार पुण्यात्मा सेवादारों में शामिल होना चाहते हैं ? तो संपर्क कीजिये 'ऋषि प्रसाद' के मुख्य कार्यालय से । प्रसाद वितरण के लिए ही होता है । जो हमें 'ऋषि प्रसाद' द्वारा मिल रहा है, उसे दूसरों तक पहुँचाना हम सबका उत्तरदायित्व है । 'ऋषि प्रसाद' में आप पायेंगे अमृत की अनेक प्यालियाँ :

गुरु संदेश मंत्र मंजूषा घर परिवार विवेक जागृति गीता अमृत
शास्त्र प्रकाश जीवन सौरभ कथा प्रसंग योगामृत संत वाणी
श्री योगवासिष्ठ महारामायण पर्व मांगल्य शरीर स्वास्थ्य नारी ! तू नारायणी
युवा जागृति ध्यान के क्षणों में सुखमय जीवन के सोपान वास्तु-शास्त्र
संस्था समाचार भागवत प्रवाह काव्य गुंजन
यौगिक प्रयोग संस्कृति सुवास उपासना अमृत साधकों के लिए
संत-चरित्र भक्त चरित्र भक्तों के अनुभव विचार मंथन
राष्ट्र जागृति वे कहते हैं...

घर-घर में हो 'ऋषि प्रसाद' अभियान

Posting at Rishi Prasad PSO between 1" to 14" of E.M. Back issue at PSO-AHD * Posting at ND.PSO on 5" & 6" of E.M. * Posting at MBI Patrika Channel on 9" & 10" of E.M.